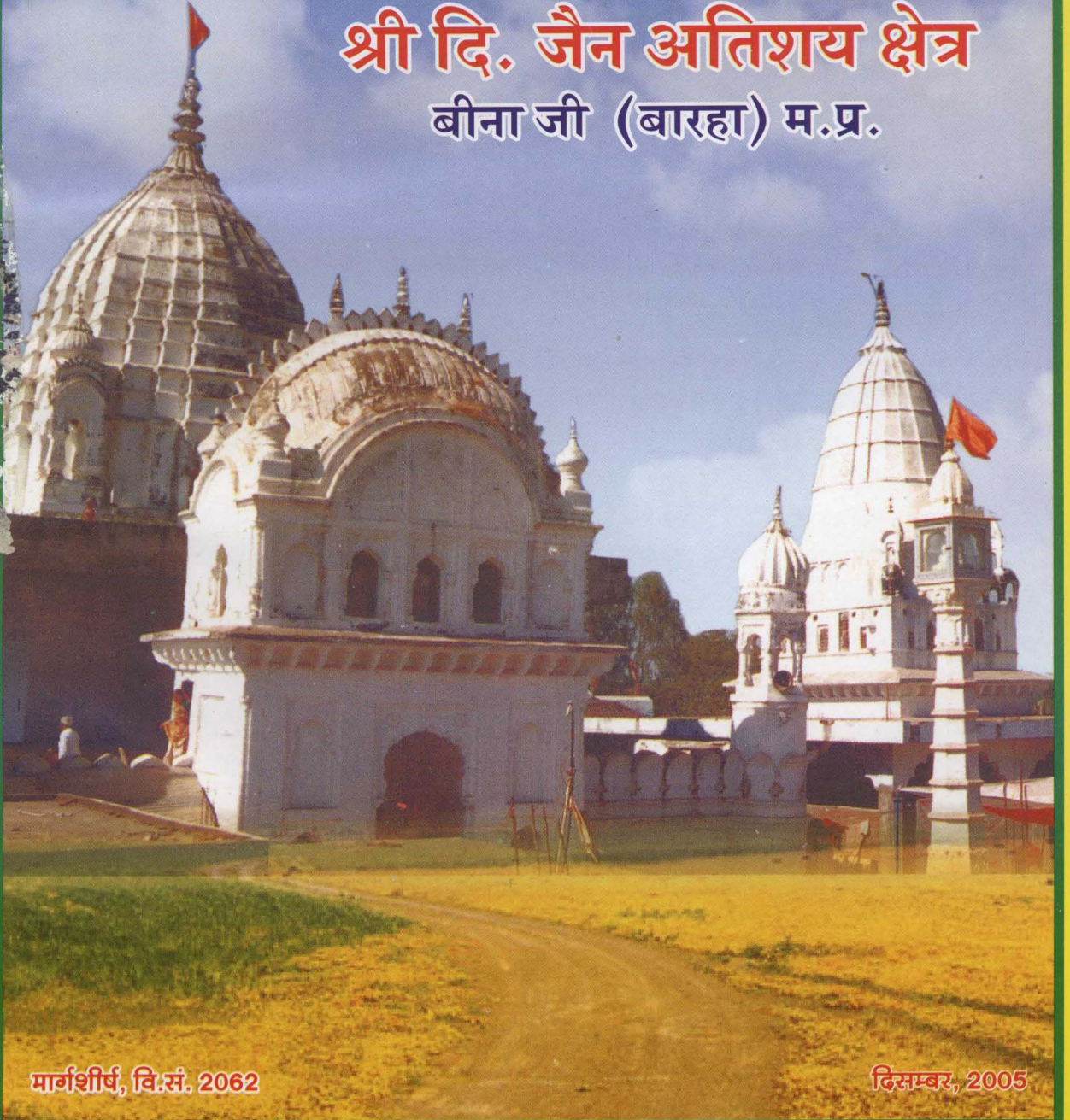


जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2532

श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र
बीना जी (बारहा) म.प्र.

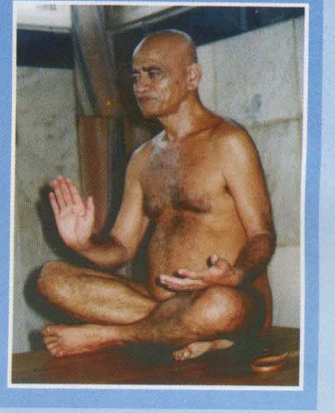


मार्गशीर्ष, वि.सं. 2062

दिसम्बर, 2005

त्यागी - वृत्ति

• आचार्य श्री विद्यासागर जी



योग के पहले जागृति परम अपेक्षणीय है। निजी सम्पत्ति की पहचान जब हो जाती है तब विषय सामग्री निरर्थक लगती है और उसका त्याग सहज सरलता से हो जाता है।

यथाशक्ति त्याग को “शक्ति-तस्त्याग” कहते हैं। “शक्ति अनुलंघ्य यथाशक्ति” अर्थात् शक्ति की सीमा को पार न करना और साथ ही अपनी शक्ति को नहीं छिपाना इसे यथाशक्ति कहते हैं और इस शक्ति के अनुरूप त्याग करना ही शक्ति-तस्त्याग कहा जाता है।

भारत में जितने भी देवों के उपासक हैं, चाहे वे कृष्ण के उपासक हों, चाहे वे राम के उपासक हों अथवा बुद्ध के उपासक हों, सभी त्याग को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। ऐसे ही महावीर के भी उपासक हैं। किन्तु महावीर के उपासकों की विशेषता यही है कि उनके त्याग में शर्त नहीं है। हठग्राहिता नहीं है। यदि त्याग में कोई शर्त है तो वह त्याग महावीर का कहा हुआ त्याग नहीं है।

सामान्य रूप से त्याग की आवश्यकता हर क्षेत्र में है। रोग की निवृत्ति के लिए, स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए, जीवन जीने के लिए और इतना ही नहीं, मरण के लिए भी त्याग की आवश्यकता है। जो ग्रहण किया है उसी का त्याग होता है, पहले ग्रहण फिर त्याग यह क्रम है। ग्रहण होने के कारण ही त्याग का प्रश्न उठता है। अब त्याग किसका किया जाये? तो अनर्थ की जड़ का त्याग, हेय का त्याग किया जाये। कूड़ा-कचरा, मल आदि ये सब हेय पदार्थ हैं। इन हेय पदार्थों के त्याग में कोई शर्त नहीं होती; न ही कोई मुहूर्त निकलवाना होता है क्योंकि इनके त्याग के बिना न सुख है न शान्ति। इन्हें त्यागे बिना तो जीवन भी असम्भव हो जायेगा।

त्याग करने में दो बातों का ध्यान रखना परम अपेक्षणीय है। पहला यह कि दूसरों की देखा देखी नहीं करना और दूसरा ये कि अपनी शक्ति की सीमा का उल्लंघन नहीं करना क्योंकि इससे सुख के स्थान पर कष्ट की ही आशंका अधिक है।

त्याग में कोई शर्त नहीं होनी चाहिए। किन्तु हमेशा से आपका त्याग ऐसा ही शर्तयुक्त रहा है। दान के समय भी आपका ध्यान आदान में लगा रहता है। यदि कोई व्यक्ति सौ रुपये के सवा सौ रुपये करने के लिये त्याग करता है तो यह कोई त्याग नहीं माना जायेगा। यह दान नहीं है आदान है। एक विद्वान् ने लिखा है कि दान तो ऐसा देना चाहिए जो दूसरे हाथ को भी मालूम न पड़े। यदि त्याग किये हुये पदार्थ में लिप्सा लागी रही इच्छा बनी रही, यदि इस पदार्थ के भोगने की वासना हमारे मन में चलती रही और अधिक प्राप्ति की आकांक्षा बनी रही तो यह त्याग नहीं कहलायेगा।

बाह्य मलों के साथ-साथ अंतरंग में रागद्वेष रूपी मल भी विद्यमान है जो हमारी आत्मा के साथ अनादिकाल से लगा हुआ है। इसका त्याग करना/छोड़ना ही वास्तविक त्याग है। ऐसे पदार्थों का त्याग करना ही श्रेयस्कर है जिनसे रागद्वेष, विषय-कषायों की पुष्टि होती है।

अजमेर में एक सज्जन मेरे पास आये और बोले- “महाराज, मेरा तो भावपूजा में मन लगता है, द्रव्यपूजा में नहीं।” तो मैंने कहा भइया ये तो दान से बचने के लिए पगडण्डियाँ हैं। पेट पूजा के लिए कोई भाव-पूजा की बात नहीं करता। इसी तरह भगवान् की पूजा के लिये सस्ते पदार्थों का उपयोग करना और खाने-पीने के लिये उत्तम से उत्तम पदार्थ लेना यह भी सही त्याग नहीं है। कई लोग तो ऐसा सोचते हैं कि भगवान् महावीर ने तो नासा-इन्द्रिय को जीत लिया है। तब उनके लिये सुरभित सुगन्धित पदार्थ क्यों चढ़ाना, ये हमारे मन की विचित्रता है। पूजा का मतलब तो यह है कि भगवान् के सम्मुख गद्गद् होकर विषयों और कषायों का समर्पण किया जाये। जब तक इस प्रकार का समग्र-समर्पण नहीं होता तब तक पूजा की सार्थकता नहीं है।

त्याग के पहले जागृति परम अपेक्षणीय है। निजी सम्पत्ति की पहचान जब हो जाती है, उस समय विषय-सामग्री कूड़ा-कचरा बन जाती है और उसका त्याग सहज हो जाता है। इस कूड़े-कचरे के हटने पर अपनी अन्तरंग की मणि अलौकिक ज्योति के साथ प्रकाशित हो उठती है। त्याग से ही आत्मा रूपी हीरा चमक उठता है। जैसे कूड़ा-कचरा जब साफ हो जाता है तब जल निर्बाध प्रवाहित होने लगता है इसी प्रकार विषय-भोगों का कूड़ा-कचरा जब हट

जाता है तो ज्ञान की धारा निर्बाध अन्दर की ओर प्रवाहित होने लगती है।

“आत्म के अहित विषय-कषाय इनमें मेरी परिणति न जाये” और

“यह राग आग दहै सदा तातें समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निज पद वेइये॥”

ये राग तपन पैदा करता है। विषय-कषाय हमें जलाने वाले हैं। यह हमारा पद नहीं है। यह ‘पर’ पद है। अपने पद में आओ। आज तक हम आस्रव में जीवित रहे हैं निर्जरा

कभी हमारा लक्ष्य नहीं रहा। इसलिये दुःख उठाते रहे। जब तक हम भोगों का विमोचन नहीं करेंगे, उपास्य नहीं बन पायेंगे।

योग जीवन है, भोग मरण है। योग सिद्धत्व को प्रशस्त करने वाला है और भोग नरक की ओर ले जाने वाला है। आस्था जागृत करो। विश्वास/आस्था के अभाव में ही हम स्व-पद की ओर प्रयाण नहीं कर पायें हैं। त्याग के प्रति अपनी आस्था मजबूत करो ताकि शाश्वत सुख को प्राप्त कर सको।

‘समग्र’ से साभार

चलें पाठशाला हम तुम

मुनि श्रीसुव्रतसागर जी

आओ बच्चो, आओ बच्चो, चलें पाठशाला हम तुम।
वहाँ मिलेंगे सद्गुण हमको, और धर्म सीखेंगे हम ॥

पाप पुण्य क्या कहलाता ?
स्वर्ग नरक क्या कहलाता ?
किसे अधर्म धर्म बोलें हम ?
सत्य झूठ क्या कहलाता ?

सारे जग की सच्चाई की, सद्शिक्षा पायेंगे हम।
वहाँ मिलेंगे सद्गुण हमको, और धर्म सीखेंगे हम ॥

क्या होता पूजन अर्चन से ?
क्या होता अभिनन्दन से ?
क्या होता तीर्थ यात्रा से ?
क्या होता गुरु के वंदन से ?

वीतरागता क्या कहलाती ? इसको पहचानेंगे हम।
वहाँ मिलेंगे सद्गुण हमको, और धर्म सीखेंगे हम ॥

विनय पिता-माता गुरुओं की,
सेवा दया अहिंसा क्या ?
क्या पापों का फल होता है ?
जानो चोरी हिंसा क्या ?

करनी का फल किसने पाया ? ये बाते जानेंगे हम।
वहाँ मिलेंगे सद्गुण हमको, और धर्म सीखेंगे हम ॥

कैसे हमको वस्त्र पहनना ?
क्या हमको खाना पीना ?
कैसे हमको बाल कटाना ?
कैसे यह जीवन जीना ?

सदाचार की अच्छी शिक्षा, शीघ्र मुफ्त पायेंगे हम।
वहाँ मिलेंगे सद्गुण हमको, और धर्म सीखेंगे हम ॥

क्या? कब? करें मनोरंजन हम,
क्यों? कब? टी.वी. देखें हम।
किससे जीवन स्वस्थ रहेगा?
खेल कौन से खेलें हम ?

महत्त्वपूर्ण जीवन की कीमत, समयमूल्य पायेंगे हम।
वहाँ मिलेंगे सद्गुण हमको, और धर्म सीखेंगे हम ॥

कैसी पुस्तक हमको पढ़ना ?
कैसे मित्र बनाना है ?
क्या? सीमाएँ हैं अपनी,
कैसे गुरु अपनाना है ?

नियम व्रतों का फल क्या होता? कैसे ये पालेंगे हम?
वहाँ मिलेंगे सद्गुण हमको, और धर्म सीखेंगे हम ॥

जैसे प्यारा हमको जीवन,
और सुखी हमको बनना।
वैसे ही औरों का जीवन,
दुःखी नहीं पर को करना ॥

रखो मित्रता सब जीवों से, सबको गले लगायें हम।
वहाँ मिलेंगे सद्गुण हमको, और धर्म सीखेंगे हम ॥

आओ बच्चो, आओ बच्चो,
चलें पाठशाला हम तुम ॥

दिसम्बर-2005

मासिक जिनभाषित

वर्ष 5, अङ्क 11

सम्पादक

प्रो. रतनचन्द्र जैन



कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666



सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया,
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर



शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी
(आर.के. मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)

श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर



प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278



सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- संपादकीय : जिनभाषित को अहिंसा इण्टरनेशनल पुरस्कार 3
- प्रवचन
 - ◆ त्यागीवृत्ति : आचार्य श्री विद्यासागर जी आ.पृ.2
 - ◆ संस्कार अच्छे होंगे, तभी संस्कृति बचेगी आ.पृ.3
 - : मुनि श्री सुधासागर जी
 - ◆ योग्यता का अभिनन्दन : स्वावलम्बन 4
 - : मुनि श्री गुप्तिसागर जी
- लेख
 - ◆ पिच्छिका परिवर्तन क्यों? : मुनि श्री चन्द्रसागर जी 8
 - ◆ शासनदेव पूजा-रहस्य : श्री रतनलाल कटारिया 10
 - ◆ ऐलकचर्या क्या होनी चाहिये और क्या हो रही है? 15
 - : स्व. पं. मिलापचन्द्र जी कटारिया
 - ◆ बीना (बारहा) का विस्मृत कला-वैभव 17
 - : स्व. डॉ. श्री कस्तूर चन्द्र जी जैन
 - ◆ अल्प संख्यक : एक संवैधानिक कवच या लाभ का जरिया ? 21
 - : कैलाश मड़बैया
 - ◆ पृथ्वी की दिशाएँ घूर्णन के साथ स्थिर रहती हैं 24
 - : राज कुमार कोठ्यारी
- जिज्ञासा-समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा 25
- कविताएँ
 - ◆ चलें पाठशाला हम तुम : मुनि श्री सुव्रतसागर जी 1
 - ◆ दाग लगा दामन में 20
 - ◆ जब जब पाती मिली 20
 - ◆ विनयाञ्जली 20
- समाचार 29-32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

‘जिनभाषित’ को अहिंसा इण्टरनेशनल पुरस्कार

जिनभाषित के पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उनकी इस प्रिय पत्रिका को अहिंसा इण्टरनेशनल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

अहिंसा इण्टरनेशनल संस्था की स्थापना सन् 1973 में दिल्ली में हुई थी। 32 वर्ष के कार्यकाल में इस संस्था ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनायी है। स्वदेश में तथा अमेरिका, लन्दन, बैकाक, सिंगापुर आदि विदेशों में अनेक जैन सम्मेलन आयोजित कर अथवा उनमें सक्रिय सहयोग प्रदान कर इसने अहिंसा, सद्भाव, शाकाहार, जीवदया, विकलांग-सेवा, समयोचित साहित्यसृजन आदि से सम्बन्धित प्रवृत्तियों को अप्रेसर किया है और इनके माध्यम से जैन विचारधारा को दूर-दूर तक सम्प्रेषित किया है। यह संस्था प्रतिवर्ष निम्नलिखित तीन पुरस्कार भी प्रदान करती है - 1. अहिंसा इण्टरनेशनल डिप्टीमल आदीश्वरलाल जैन साहित्य पुरस्कार (31000 रुपये), 2. अहिंसा इण्टरनेशनल भगवानदास शोभालाल जैन शाकाहार पुरस्कार (21000 रुपये), तथा 3. अहिंसा इण्टरनेशनल प्रेमचन्द जैन पत्रकारिता पुरस्कार (21000 रुपये)।

वर्ष 2004 के लिए ये पुरस्कार क्रमशः प्रो. डॉ. विद्यावती जी जैन आरा, श्री महावीर प्रसाद जी जैन दिल्ली एवं प्रो. डॉ. रतनचन्द्र जैन भोपाल को प्रदान किये गये। इस वर्ष के लिए एक विशेष पुरस्कार, अहिंसा इण्टरनेशनल डिप्टीमल आदीश्वरलाल जैन जीवदया पुरस्कार (21000 रुपये) श्री बुद्धिप्रकाश जैन भैसोदामंडी (मन्दसौर म.प्र.) को भी समर्पित किया गया।

पुरस्कार-वितरण दि. 5 नवम्बर 2005 को प्रातः 8.15 पर बाहुबली एन्क्लेव दिल्ली में आचार्य श्री पुष्पदन्तसागर जी के शिष्यद्वय मुनि श्री सौरभसागर जी एवं मुनि श्री प्रबलसागर जी के सान्निध्य में समारोहपूर्वक किया गया। जिनभाषित के सम्पादक को जो प्रशंसनीय सम्पादन-कुशलता के लिए पत्रकारिता पुरस्कार प्रदान किया गया, उसके लिए जिनभाषित-परिवार अहिंसा इण्टरनेशनल संस्था, उसके पुरस्कार प्रदाताओं और पदाधिकारियों का हृदय से धन्यवाद करता है।

पुरस्कार और तिरस्कार, प्रशंसा और निन्दा का मानव-प्रवृत्तियों पर बड़ा असर होता है। पुरस्कार मानव की कृति का, उसकी निष्ठा और अध्यवसाय का मूल्यांकन करता है और सत्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करता है। वह मनुष्य में आत्मविश्वास का संचार करता है, उसे सुदृढ करता है। वह आश्वस्त करता है कि उठाये गये कदम सही दिशा में, लोकानुमोदित दिशा में उन्मुख हैं और उस दिशा में प्रगति होती रहनी चाहिए। पुरस्कार सत्प्रवृत्तियों की मही अनुमोदना है। अतः वह स्वयं में एक महान् सत्प्रवृत्ति है। अहिंसा इण्टरनेशनल के पुरस्कारप्रदाताओं ने उर ऋष्ट जैन-साहित्य के अबाध सृजन, शाकाहार और जीवदया की प्रेरणा के उत्कृष्ट प्रयास तथा जिनशासन के यथार्थ स्वरूप की प्रस्तुति एवं प्रभावना हेतु कुशल पत्रकारिता की प्रवृत्ति को गतिमान् बनाये रखने की दिशा में मनोवैज्ञानिक उपाय अपनाकर जिनशासन की प्रभावना का सत्प्रयास किया है, अतः वे अभिनन्दीय हैं।

इस इण्टरनेशनल संस्था द्वारा ‘जिनभाषित’ को पुरस्कृत किया जाना इस बात का प्रमाण है कि यह पत्रिका अपने नाम के अनुसार कार्य कर रही है। यह ‘जिनभाषित’ अर्थात् जिनोपदेश का सम्यग्रूपेण प्रतिपादन कर रही है, उक्त संस्था के देश-विदेश में फैले हुए सदस्य ‘जिनभाषित’ के सम्पादकीय एवं अन्य लेखों, कविताओं-कथाओं एवं जिज्ञासा-समाधान को पसन्द करते हैं, उन्हें आगमसम्मत और युक्तिसंगत मानते हैं। जिनभाषित के जन्मकाल से ही सुधी पाठकों से जो प्रतिक्रियाएँ प्राप्त होती आ रही हैं, उनसे भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है। पत्र-पत्रिकाओं के लिए पाठकों की प्रतिक्रियाएँ दर्पण के समान होती हैं। वे उसमें अपना रूप निहारती हैं, अपनी कान्ति और कलंक के दर्शन करती हैं और फिर अपने रूप को निखारती हैं।

‘जिनभाषित’ का उद्देश्य है कि इसमें ज्ञानवर्धक एवं समीचीन-श्रद्धा-पोषक लेख प्रकाशित हों, लेख शोधपूर्ण हों अर्थात् उनसे शास्त्रों की ऐसी बातें सामने आवें, जो अभी तक अनुद्घाटित हों अथवा उनमें सिद्धान्तों की विशेष सन्दर्भ में विशेष व्याख्या की गयी हो। जिनभाषित का उद्देश्य ऐसे लेख छापना भी है, जिनसे समाज में फैले अन्धविश्वासों, मिथ्याश्रद्धाओं और आगमविरुद्ध प्रवृत्तियों की पहचान हो और उनसे छुटकारा पाने की प्रेरणा मिले। ऐसे लेखों के लेखक आज विरले हैं। पुराने जमाने की याद आती है, जब ‘जैनहितैषी’ और ‘अनेकान्त’ जैसी पत्रिकाएँ पं. नाथूराम जी प्रेमी और पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार जैसे विद्वानों के सम्पादकत्व में निकलती थीं। उनमें प्रकाशित लेख शोधपूर्ण एवं अत्यंत ज्ञानवर्धक होते थे। उनके लेखक भी बड़े निष्णत एवं साहित्य-व्यसनी होते थे। उन्होंने उक्त पत्रिकाओं में जो लेख लिखे हैं, वे जैन साहित्य और इतिहास को समझने में युगों-युगों तक दीपक का काम करेंगे। विद्वानों की वर्तमान पीढ़ी से ऐसे लेख बहुत कम उपलब्ध हो पा रहे हैं, इसलिए पूर्व विद्वानों के एक-दो पुराने लेख हम ‘जिनभाषित’ में देते हैं, जिनसे वर्तमान पाठकों को उनके शोधपूर्ण विचारों से अवगत होने का दुर्लभ अवसर प्राप्त होता है तथा नये लेखकों को उनका अनुकरण करने की प्रेरणा मिलती है।

रतनचन्द्र जैन

योग्यता का अभिनन्दन : स्वावलम्बन

उपाध्याय श्री गुप्तिसागर मुनि

अपने ऊपर विश्वास करना; अपनी शक्तियों पर विश्वास करना; एक ऐसा दिव्य गुण है, जो हर कार्य को करने योग्य साहस, विचार एवं योग्यता उत्पन्न करता है। दूसरों के ऊपर निर्भर रहने से अपना बल घटता है और इच्छाओं की पूर्ति में अनेक बाधाएं उपस्थित होती हैं। स्वाधीनता, निर्भयता और प्रतिष्ठा इस बात में है कि अपने ऊपर निर्भर रहा जाए; सफलता का सच्चा और सीधा पथ भी यही है।

यह संसार प्रतियोगिता का रंग स्थल है। यहाँ पर जो विजयी होता है, वही पुरस्कृत किया जाता है। जो अपनी योग्यता और पात्रता का प्रमाण देता है, विजयश्री वही वरण करता है। अयोग्य, आलसियों और परावलम्बियों के लिए इस संघर्ष भूमि में कोई स्थान नहीं है।

पुरुषार्थ का सहारा

यदि जीवन में कुछ बनने की इच्छा है तो स्वयं अपने पुरुषार्थ का ही सहारा लेना होगा। यह सोचना गलत होगा कि कोई दूसरा कृपा करके कोई ऐसा मार्ग प्रशस्त कर देगा जो इच्छित लक्ष्य की ओर जाता हो। यह सच है कि उन्नति करने के लिए समाज की सहायता एवं सहयोग की आवश्यकता होती है, किन्तु इस आवश्यकता की पूर्ति यों ही अनायास नहीं हो जाती। उसके लिए योग्यता और पात्रता का प्रमाण देना नितान्त आवश्यक है, जिसको पाने के लिए फिर भी स्वयं अपने आप पुरुषार्थ करना होगा। जो लोग अपना स्वतन्त्र पुरुषार्थ न करके अपना श्रम और योग्यता दूसरों के हाथ बेच देते हैं वे कदाचित् ही आत्मनिर्भर बन पाते हैं।

भौतिक उन्नति की तरह आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति भी आत्मनिर्भरता पर ही निर्भर है। इस विषय में श्रेष्ठ और सिद्ध पुरुषों से निर्देश तथा पथ दर्शन तो पाया जा सकता है, लेकिन उसकी साधना स्वयं ही करनी होती है। आत्मविश्वास के सम्बन्ध में किसी दूसरे की साधना अपने काम नहीं आ सकती। आत्म साधना में जिस संयम-नियम-व्रत-उपवास, अनुष्ठान और तपस्या की आवश्यकता होती है, उसका साधन स्वयं अपने आप ही करना होगा, तभी उनका यथार्थ लाभ प्राप्त हो सकता। यदा-कदा गुरुजनों की

कृपा से भी आत्म प्रकाश की किरणें मिल जाती हैं, किन्तु इस कृपा के लिए पुनः आत्मनिर्भरता पर आना होगा। गुरु अथवा ज्ञानी पुरुष को प्रसन्न करने के लिए जिस सेवा और परिचर्या की आवश्यकता होती है वह तो अपने किए ही पूरी हो सकती है। कोई बदले में सेवा करके गुरुजनों की प्रसन्नता किसी दूसरे के लिए सम्पादित नहीं कर सकता।

उत्साह आवश्यक

क्षेत्र और विषय कोई भी क्यों न हो, उसमें उन्नति के लिये आत्मनिर्भरता का गुण विकसित करना ही होगा। परावलम्बी प्रवृत्ति से किसी प्रकार की उन्नति नहीं की जा सकती। आत्मविश्वास, योग्यता, क्षमता, साहस और उत्साह आदि ऐसे गुण हैं, जो जीवन को उन्नति के शिखर पर ले जाने के लिए न केवल उपयोगी ही हैं, बल्कि अनिवार्य भी हैं। जिसमें आत्मविश्वास की कमी होगी वह किसी पथ पर बढ़ने की कल्पना ही नहीं कर सकता। वह तो यथा-स्थिति को ही गनीमत समझकर चुपचाप अपना जीवन कट जाने में ही कल्याण समझेगा। जो कर्तव्य के प्रशस्त पथ पर चलेगा ही नहीं, जिसे यह विश्वास ही न होगा कि वह भी उन्नति कर सकता है, आगे बढ़ सकता है, उन्नति और प्रगति उसके लिए असंभव ही नहीं रहेगी।

जिनमें उत्साह नहीं, वे जीवन-पथ पर आई एक ही असफलता से निराश होकर बैठ जायेंगे। एक ही आघात में उनके उन्नति और विकास के सारे स्वप्न चकनाचूर हो जायेंगे। निश्चय ही उन्नति और प्रगति में उत्साह का बहुत महत्व है। उत्साह से वंचित हुआ व्यक्ति साधारण काम भी सफलता पूर्वक नहीं कर सकता, तब कोई ऊँचा लक्ष्य तो बहुत दूर की बात है।

स्वावलम्बन अथवा आत्मनिर्भरता के पवित्र व्रत पालन से उन्नति और विकास के सारे द्वार खुल जाते हैं। जिसने आत्मनिर्भरता का व्रत लिया है वह इस लज्जा से कि कहीं किसी विषय में परमुखापेक्षी होकर उसका व्रत भंग न हो जाए, स्वयं प्रयत्नपूर्वक अपने अन्दर की सारी कमियाँ दूर करता रहेगा। दूसरे का मुख देखने या हाथ पसारने के बजाय स्वाभिमानी व्यक्ति अपनी सारी कमियों को दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं छोड़ेगा। चाहे फिर इसके लिए उसे

कितना ही कष्ट और कठिनाई क्यों न उठानी पड़े।

किसी भी क्षेत्र अथवा विषय में उन्नति क्यों न करनी हो, कोई भी लक्ष्य क्यों न पाना हो, स्वावलम्बी बने बिना उसमें सफलता नहीं मिल सकती। दूसरों की शक्तियों, साधनों और परिस्थितियों पर अपना जीवन लक्ष्य निर्भर कर देने वाले प्रायः असफल होते हैं।

परावलम्बी : पृथ्वी का बोझ

परावलम्बी व्यक्ति न केवल अपने लिए ही समस्या है बल्कि दूसरों के लिए भी समस्या और उलझन बनता रहता है। साधारण-सी कठिनाईयों और कामों के लिए दूसरों के पास जाकर खड़ा हो जाता है और सहायता/सहयोग की याचना करने लगता है। कोई भी लक्ष्यनिष्ठ व्यक्ति उसकी इस याचना से असमंजस में पड़ जाता है। यदि वह उसके नगण्य से काम के लिए अपना बहुमूल्य समय देता है तो अपनी उन्नति की स्पर्धा में दो कदम पीछे रह जाता है और यदि इंकार करता है तो मानवीय उदारता पर आंच आती है। बहुत बार तो उसे अपनी हानि कर उसके काम में वक्त देना होता है और बहुत बार मजबूरी बताकर मानसिक वेदना सहनी पड़ती है। ऐसे परमुखापेक्षी और परावलम्बी व्यक्ति वास्तव में धरती पर भार के सिवाय और कुछ नहीं होते।

परावलम्बन बड़ी हीन, हानिकारक और लज्जास्पद वृत्ति है। हर स्वाभिमानी व्यक्ति को इसका त्याग कर देना चाहिए। स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता एक बड़ी उदात्त और आदर्श वृत्ति है। हर प्रयत्न और पुरुषार्थ के मूल्य पर इसे विकसित करना ही चाहिए। परावलम्बन मनुष्य की मानसिक दुर्बलता है जो उचित नहीं है। पुरुष को पुरुषार्थ ही शोभा देता है। उसे हर प्रकार से अपने हर क्षेत्र में स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनना चाहिए और संसार में चल रही भौतिक अथवा आध्यात्मिक, किसी भी प्रतियोगिता को अंगीकार कर विजयश्री वरण करनी ही चाहिए।

ऐसा नहीं है कि प्रत्येक समस्या या गुत्थी को सुलझाने में व्यक्ति स्वयं समर्थ होता है। कभी-कभी दूसरों की सहायता भी लेनी पड़ती है। दूसरों से सहायता अवश्य लीजिए परन्तु उन पर अवलम्बित मत रहिए। अपने पैरों पर खड़े होकर अपनी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न कीजिए। जब आत्मविश्वास के साथ सुयोग्य मार्ग की तलाश करेंगे तो वह किसी न किसी प्रकार मिल कर ही रहेगा।

जब मनुष्य आत्मनिर्भरता के वीरतापूर्ण दृष्टिकोण को छोड़कर पराया मुंह ताकने की कायरता, क्लीवता और हीनता की अंधकारमयी भूमिका में उतरता है तो वह बड़े दीन वचन बोलने लगता है एवं दूसरों से अपेक्षाएं रखने लगता है। वस्तुतः सारी समस्याओं को सुलझाने की कुंजी अपने अन्दर है। दूसरे लोगों से जिस बात की आशा करते हैं, उसकी योग्यता अपने अन्दर पैदा कीजिए। ऐसा करने पर आप पायेंगे कि बिना सहायता माँगे अनायास ही आपकी वह इच्छाएं पूरी होने लगेंगी। जरूरत है तो सिर्फ दृढ़ इच्छाशक्ति की।

आत्मनिर्भरता : योग्यता का पुरस्कार

आत्मनिर्भरता मात्र विचार करने से नहीं आती बल्कि उसके लिए प्रयत्न भी करने पड़ते हैं तथा प्रयत्नों को विचारों के अनुरूप ढालने की कोशिश भी करनी पड़ती है। जैसे कि आप नहीं चाहते हैं कि बीमारी आपको सताये, तो आप स्वास्थ्य के नियमों पर दृढ़ता पूर्वक चलना आरम्भ कर दीजिए। यदि आप चाहते हैं कि ऐश-आराम उड़ावें; तो धन कमाना आरम्भ कर दीजिए। आप चाहते हैं कि आपके भी बहुत से मित्र हों, तो आप अपना स्वभाव आकर्षक बनाइये। आप चाहते हैं कि लोग आपका लोहा मानें, तो शक्ति संपादन कीजिए। आप चाहते हैं कि प्रतिष्ठा प्राप्त हो; तो प्रतिष्ठा के योग्य कार्य कीजिए। आप चाहते हैं कि ऊँचा पद प्राप्त हो तो उसके योग्य गुणों को एकत्रित कीजिए। और यदि आप धन, बुद्धि, बल, विद्या चाहते हैं तो परिश्रम और उत्साह उत्पन्न करिये। जब तक अपने भीतर वे गुण नहीं हैं जिनके द्वारा मनोवाञ्छाएँ पूरी हुआ करती हैं, तब तक यह आशा रखना व्यर्थ है कि आप सफल मनोरथी हो जावेंगे।

सफल मनोरथ के लिए बाहर की शक्तियाँ भी सहायता किया करती हैं, पर करती उन्हीं की हैं जो उसके पात्र हैं। इस संसार में अधिक योग्य को महत्त्व देने का नियम सदा से चला आया है। संसार में सुयोग्य व्यक्तियों को सब प्रकार सहायता मिलती है। माली अपने बाग में तन्दुरुस्त पौधों को खूब हिफाजल करता है और जो कमजोर होते हैं उन्हें उखाड़ कर उसकी जगह पर दूसरा बलवान पौधा लगा देता है। इसी प्रकार ईश्वर की सहायता भी सुयोग्यों को ही मिलती है। संसार में सफलता, लाभ की आकांक्षा के साथ अपनी योग्यता में वृद्धि करना भी आरम्भ कीजिए। यदि आप आत्मनिर्भर हो जावें एवं आप जैसा होना चाहते हैं, उसके अनुरूप

अपनी योग्यताएँ अर्जित करने लगें तो कोई शक्ति नहीं जो आपको लक्ष्य तक न ले जाये।

सफलता के अग्रदूत

अपनी आत्मा को बाह्य परिस्थितियों का निर्माता - केन्द्र बिन्दु मानिये। जो घटनाएँ सामने आ रही हैं, उनकी प्रिय-अप्रिय अनुभूति का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लीजिए। अपने को जैसा चाहे वैसा बना लेने की योग्यता अपने में समझिये। अपने ऊपर विश्वास कीजिए। किसी और का आसरा मत देखिये। बिना आपके निजी प्रयत्न के योग्यता संपादन के बाहरी सहायता प्राप्त न होगी। यदि होगी तो उसका लाभ बहुत थोड़े समय में समाप्त हो जाएगा और पुनः वही दशा उपस्थित होगी जो पूर्व में थी। उत्साह, लगन, दृढ़ता, साहस, धैर्य और परिश्रम इन छः गुणों को सफलता का अग्रदूत माना गया है। इन दूतों का निवास स्थान आत्मविश्वास में है। अपने ऊपर भरोसा करेंगे तो ये गुण उत्पन्न होंगे।

'उद्धरेत् आत्मनात्मानम्' की शिक्षा देते हुए गीता ने स्पष्ट कर दिया है कि यदि अपना उत्थान चाहते हो तो उसका प्रयत्न स्वयं करो। जैसे अपने पेट के पचाये बिना अन्न हजम नहीं हो सकता। जैसे अपनी आंखों के बिना दृश्य दिखाई नहीं पड़ सकता, उसी प्रकार अपने प्रयत्न बिना उन्नत-अवस्था को भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

परावलम्बन बनाम पराधीनता

आत्मविश्वासी; आत्मनिर्भर भी होता है। आत्मनिर्भर व्यक्ति कभी बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ नहीं बनाता। वह केवल उतना ही सोचता है, जितना उसे करना होता है, और जितना कर सकने की उसमें शक्ति होती है। जबकि पर-निर्भर व्यक्ति की सहज कमजोरी यही होती है कि वह दूसरों के भरोसे जीवन में बड़े-बड़े लक्ष्य निर्धारित कर लेता है एवं शिष्टाचारिक आश्वासन में भी वह अखण्ड विश्वास करने लगता है। दर-असल आत्मनिर्भरता के अभाव में मनुष्य जब दूसरों के सहारे चलने की भावना का शिकार हो जाता है तो संसार में हर व्यक्ति उसे शक्तिवान तथा मित्र मालूम होता है और तब उसका विश्वास उसके प्रति स्थायी हो जाता है।

यही कारण है कि परावलम्बी व्यक्ति आजीवन दुःखी एवं दरिद्र बना रहता है। जो दूसरों के सहारे जीना चाहेगा उसे दयनीय जीवन बिताना ही होगा। परावलम्बन का दूसरा नाम पराधीनता है- 'पराधीन सपने हु सुख नाही' वाली दशा

में कभी भी कोई व्यक्ति मुक्त नहीं हो सकता। वह सदा त्रस्त, दुःखी तथा असंतुष्ट ही रहेगा। पर-निर्भरता संसार का सबसे बड़ा अभिशाप है। भारतीय संस्कृति के प्राण श्रमण साधु सन्तों का जीवन यद्यपि श्रावकाधीन अथवा अनुयायियों के आश्रित होता है परन्तु वे सिंह की भांति स्वावलम्बी होते हैं। यदि उनमें पूर्ण स्वावलम्बन और शक्ति-उद्घाटन की क्षमताएं जीवन्त न हों तो क्या वे संन्यास ले सकते हैं? आगम अध्यात्म की सम्प्राप्ति उन्हें हो सकती है? क्या परावलम्बी कभी किसी को स्वावलम्बन की डगर सुझा पायेगा? पोखर की दलदल में स्नान करने वाला गंगासागर में स्नान करने वालों को क्या उपदेश दे सकेगा? जो मुहल्ले में ही भटक जाता है वह संसार यात्रा के लिए क्या किसी का पथ-प्रदर्शक बनने में बेहिचक तैयार हो सकेगा? गहरा गड्ढा हिमालय की ऊँचाई से क्या यह कह सकेगा कि अभी कुछ नहीं है, बहुत नीचे हो, जरा और उठो? यदि नहीं, तो फिर जिनका जीवन परावलम्बन पर आश्रित होगा, क्या वे दूसरों को स्वावलम्बन जीवन जीने की हिदायतें दे सकेंगे? हाँ, इसीलिए श्रमण योगी पुरुष किसी की अपेक्षा किये बिना अध्यात्म की यात्रा अबाधित रूप से बरकरार रखते हुए दूसरों के दिग्दर्शन बन वर्तमान में निरपेक्ष जीते हैं, उन्हें न भूत की स्मृति होती है और न अनागत का ख्याल। जिसे रू-ब-रू देखा है अध्यात्म के शिखर आचार्य कुन्दकुन्द में। उनके शब्द हैं-

उष्णणोदयभोगे वियोगबुद्धीय तस्स सो णिच्चं ।

कंखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी ॥

-समयसार

ऐसा ही योग्यता सम्पन्न स्वावलम्बी व्यक्ति सर्वत्र अभिनन्दनीय, अभिवन्दनीय, अनुकरणीय एवं श्लाघनीय होता है। इन महापुरुषों का अभिनन्दन वाणी, शब्दों एवं प्रशस्ति पत्रों से नहीं होता, उनका सच्चा अभिनन्दन भक्ति और अनुकरण से होता है।

वस्तुतः जो आत्मनिर्भर है, आत्मविश्वासी तथा आत्म-निर्णायक है, जिसके पास अपनी बुद्धि और अपना विवेक है, उसका ही जीवन सफल और संतुष्ट होता है। स्वावलम्बी दूसरों पर आश्रित नहीं रहता। आत्मनिर्भर व्यक्ति का लक्ष्य उसकी गति के साथ स्वयं उसकी ओर खिंचता चला जाता है। आत्मनिर्भर व्यक्ति के लिए समय के साथ अपनी शक्ति के भरोसे से प्रारम्भ किया हुआ काम ठीक उसी प्रकार फल लाता है, जिस प्रकार बोया हुआ बीज फलीभूत होता है।

आत्मनिर्भरता : दिव्य गुण

आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास ऐसे दिव्य गुण हैं; जिनको विकसित कर लेने पर संसार का कोई भी कार्य कठिन नहीं रह जाता। आत्मवान् व्यक्ति में समयानुसार बुद्धि का स्वयं स्फुरण होता रहता है। आत्मविश्वासी को अपने निर्णय तथा कार्य पद्धति में किसी प्रकार का संदेह नहीं होता। वह उन्हें विश्वास पूर्वक कार्यान्वित करके सफलता प्राप्त कर ही लेते हैं। आत्मनिर्भर व्यक्ति में अपनी असफलता का दोष दूसरों को देने की निकृष्ट निर्बलता नहीं होती। आत्मनिर्भर मानव अपनी असफलता का कारण स्वयं अपने अन्दर खोज करता है और उसे पाकर वह शीघ्र ही उसे सफलता में बदल लेता है। परावलम्बी की तरह असफलता के लिए किसी को कोसने तथा दोष देने का अवकाश उसके पास नहीं होता।

अतः यदि आप जीवन में सफलता, उन्नति, सम्पन्नता एवं समृद्धि चाहते हैं तो स्वावलम्बी बनिये। अपने जीवन पथ को खुद अपने हाथों से प्रशस्त कीजिए और उस पर चलिये भी अपने पैरों से। परावलम्बी अथवा पराश्रित रहकर आप दुनियां में कुछ न कर सकेंगे। **मनुष्य की शोभा आश्रित बनने में नहीं, आश्रय बनने में है।** क्या आश्रय बनने के लिए इससे बढ़कर कोई शानदार चीज हो सकती है कि हमारी इच्छाएं हमारे आश्रित हों, कम-से-कम हों और हम खुद ही उन्हें पूरा करें? यदि हम इच्छा निरोध या इच्छा परिमाण का व्रत ले लें तो हम पूर्णतः आत्मनिर्भर हो सकते हैं। जो इच्छाओं के दास हैं, वे पराश्रित हैं, परावलम्बी हैं। वे आश्रित हैं, आश्रय बनने जैसी विराट क्षमता उनमें कहाँ है? 'आश्रय' बनने के लिए पुरुषार्थवादी होना आवश्यक है। जो पुरुषार्थवादी हैं; वे आशावादी हैं, भाग्यशाली पुण्यात्मा हैं

उनके जीवन में सदा खुशियों के दीप जगमगाते हैं। जो भाग्यवादी हैं; वे निराशावादी हैं, पापी हैं। उनके जीवन में खुशियों के दीप उन्हीं की निराशामयी वायु के झोंके से बुझ जाते हैं।

निःसन्देह यदि आप निष्कलंक, निर्भीक और निर्द्वन्द्व जीवन जीना चाहते हैं तो आत्मनिर्भर बनकर अपना काम कीजिए और विश्वास रखिए, आप अपने लक्ष्य में अवश्य सफल होंगे। मनोवांछित जीवन के अधिकारी बनेंगे।

मनुष्य का कार्य ही उसकी क्षमता का प्रमाण है। जब योग्यताएं प्रबल होती हैं तब अधिकारों की आकांक्षा नहीं होने पर भी अधिकारों की आवलियाँ स्वतः योग्य पुरुष के पास दौड़ी चली आती हैं तथा अपने स्वावलम्बी स्वामी को विकास की ओर गतिमान करती हैं। स्वावलम्बी, श्रमजीवी हर 'दुविधा को सुविधा' में परिणत कर विषम-परिस्थितियों की घाटी को भी हँसते-हँसते पार करने का अदम्य पौरुष रखता है। उसे हीन भावना का राहु कभी अपना ग्रास नहीं बना पाता। समाज ऐसी ही स्वावलम्बी योग्यता का गौरवशाली अभिनन्दन करती है। योग्यता का मानदण्ड वेतनमान नहीं है प्रत्युत उसका स्वावलम्बी जीवन है। एक चित्रकार सुन्दर दीवार पर जो आकर्षक चित्र उकेर सकता है; वही चित्रकार 'कच्ची मिट्टी की दीवार जिस पर शैवाल एवं ईंट के टुकड़े झांक रहे हों' पर सुन्दर चित्रकारी नहीं कर सकता। यह दोष चित्रकार का नहीं अपितु दीवार की योग्यता-अयोग्यता का है। इसी भाँति अभिनन्दन किसका ? बाल, युवा, वृद्ध, अमीर- गरीब, लोकख्यात प्रतिष्ठित पदवान, किसका ? उत्तर होगा; अभिनन्दन केवल योग्यता का, स्वावलम्बी जीवन का। जिसकी बुनियाद है जीवन की नैतिकता/पवित्रता।

'किसने मेरे ख्याल में दीपक जला दिया' से साभार

विचार मंथन

मनोरंजन खरीदा जा सकता है	-	खुशी नहीं
पुस्तक खरीदी जा सकती है	-	बुद्धि नहीं
आरामदायक बिस्तर खरीदा जा सकता है	-	नींद नहीं
खाना खरीदा जा सकता है	-	पाचन शक्ति नहीं
मकान खरीदा जा सकता है	-	अपना घर नहीं
विलासिता खरीदी जा सकती है	-	संस्कार नहीं,
दवाई खरीदी जा सकती है	-	सेहत नहीं,
मंदिर बनाया जा सकता है	-	प्रभु नहीं

शांतिलाल जैन बैनाड़ा

पिच्छिका परिवर्तन क्यों?

मुनि श्री चन्द्रसागर जी

यह संयम की रक्षा का साधन अहिंसा उपकरण के रूप में जाना जाता है। जो जीव हमारी आँखों से देखने में न आये, यदि आते भी हों तो उनका परिमार्जन कर ही साधु उपकरण उठाता रखता है या बैठना, उठना करता है। यह पिच्छिका साधु पद की शोभा का चिह्न है। जैसे-विद्यार्थी बिना यूनिफार्म के जाना पहचाना नहीं जाता, वैसे ही साधु बिना पिच्छिका के जाना पहचाना नहीं जाता। एक बार आचार्य श्री के पास कुछ अंग्रेज आये उन्होंने पिच्छिका ली और संकेत करते हुए पूछा ये क्यों? तो आचार्य श्री का उत्तर था यह हमारी यूनीफार्म है, इसके बिना साधु 7 कदम से अधिक नहीं चल सकता और यदि इसके बिना चलने का (मौका) अवसर आ पड़े तो वह साधु प्रायश्चित्त का भागीदार होता है।

यह मयूर पंख वाली पिच्छिका 5 गुणों से युक्त होती है, अब आप जानना चाहेंगे कि 5 गुण कौन-कौन से हैं। जैसे-लघु, मुलायम, हल्की (वजन में), धूल नहीं लगती और पसीने को न तो ग्रहण करती है और न ही जल्दी खराब होती है। यहाँ तक देखा है कि यदि इसके बालों को आँखों में डाल दें तो आंसु नहीं आते। इससे स्पष्ट होता है, इसकी मृदुता के बारे में अब कोई संदेह शेष नहीं रह जाता, मोर जब नाचता है तो पंखों को छोड़ देता है क्योंकि नृत्य क्रिया में वे पंख उसे भारी प्रतीत होते हैं इसलिये वर्ष में 2 बार अपनी स्वेच्छा से छोड़ देता है और ऐसा भी सुनने में आता है जब वह मोर रोता है तब आंसु को पीकर मयूरी को गर्भ धारण हो जाता है। इतनी दूर-दूर रहने वाले ये सदाचारी ब्रह्मचारी जैसे प्राणी हैं शायद इसी कारण मुनिराज मयूर पंख की पिच्छिका रखते हैं। अब प्रश्न खड़ा होता है कि पिच्छिका झाड़ू नहीं है क्योंकि झाड़ू को पंचसूना में रखा है जो पंचसूना गृहस्थ के काम आते हैं, साधु के नहीं। झाड़ू हिंसा का साधन है तो ठीक इसके विपरीत पिच्छिका अहिंसा का साधन है। साधु की शोभा मूदु उपकरण से है श्रावक की शोभा झाड़ू से है, जिसके घर झाड़ू नहीं वह कैसा श्रावक। अब प्रश्न फिर उठता है आखिर ये पीछी परिवर्तन क्यों? परिवर्तन इसलिये क्योंकि इसमें जब सड़न गलन आ जाती है, जीर्ण शीर्ण हो जाती है तो पंखों में मृदुता के स्थान पर

कठोरता आ जाती है ऐसा इस कारण से होता है क्योंकि लगातार उपयोग होता है जिससे पिच्छिका के बाल झड़ जाते हैं और डन्टल रह जाते हैं। जिससे कठोर गुण वाली हो जाती है और परिमार्जन के योग्य नहीं रह जाती है इसलिये पीछी परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। अब प्रश्न उठता है गृहस्थों के हाथ में पिच्छिका क्यों? इसलिये कि वह संयम के मार्ग में आगे बढ़ सके और पिच्छिका के निमित्त से कुछ नियम संयम व्रत ब्रह्मचर्य आदि को ग्रहण करे, जिससे उसका जीवन संतुलित बन सके।

पुरानी पिच्छिका को अपने घर रखता है, ऐसे स्थान पर जहाँ से ज्यादा आना जाना होता हो, जिसे देखकर भावों में मृदुता बनी रहे और दैनिक चर्या में आचरण में कठोरता भी रही वह पुरानी पिच्छिका प्रत्येक पल याद दिलाती है कि जीवन में नवीन पिच्छिका कब धारण करूँ भावों में दरिद्रता नहीं होनी चाहिये, भले शरीर की क्षमता न हो भावों से तो संयमी जीवन होना ही चाहिये, वैसे भी श्रावकाचार में शिक्षाव्रत के अंतर्गत रखा गया है, इससे मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक बनने की शिक्षा मिलती है।

अब एक और प्रश्न उठता है साधु अपने हाथ से पिच्छिका क्यों बनाते हैं? इसका उत्तर यह है कि वे तो आरम्भ परिग्रह के त्यागी हैं क्योंकि श्रावक प्रमादी हो गया है और आगम में प्रमाद को गाली कहा है। मतलब वह अपने कर्तव्य को भूल गया है अर्थात् धर्म को भूल गया क्योंकि कर्तव्य ही धर्म है।

एक प्रसंग याद आ रहा है। चर्चा के दौरान पंडित जगमोहन लाल जी शास्त्री कटनी वालों ने कहा था कि पहले बुंदेलखण्ड में एक प्रथा थी कि श्रावक गण अपने हाथों से मयूर पंखों की पिच्छिका बनाकर अपने घर में रख लेते थे, जब चातुर्मास के बाद साधु विहार करते हुए गांव में आते थे तब घर में आहार के बाद मुनिराज से विनय पूर्वक निवेदन करते थे 'हे महाराज मैं आपको यह संयम उपकरण पिच्छिका देना चाहता हूँ क्योंकि आपका यह संयम उपकरण जीर्ण-शीर्ण हो रहा है, पुराना हो रहा है, आप नया ग्रहण करें और पुराना मुझे दे दें' ये था श्रावक का कर्तव्य और यही धर्मध्यान का सच्चा सस्ता और अच्छा साधन था, इससे साधु आरम्भ

परिग्रह याचना से बच जाता था। मतलब ये हुआ श्रावक यदि श्रावक धर्म पालन करता है तो मुनिव्रत सहज ही पल जाता है। अब पुनः प्रश्न उठता है आखिर यह मंचीय कार्यक्रम क्यों? इस मंचीय कार्यक्रम की क्या आवश्यकता है? उत्तर यह है कि यह मृदु गुणधारी पिच्छिका बोली के माध्यम से नहीं, धन-पैसों से नहीं दी जाती है यह तो संयम का उपकरण है, बदले में संयम ग्रहण करें उसी श्रावक को दी जाती है। जब बहुत से लोग एक दूसरे को पिच्छिका लेते देते देखेंगे तो दूसरों के भी व्रत मार्ग में चलने के भाव होंगे। धर्म क्षेत्र का विस्तार होगा। यह कहावत चरितार्थ होगी- 'खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है'

अब यह धीरे-धीरे प्रभावना अंग के रूप में परिवर्तित हो गया है, मतलब ये सब कार्यक्रम प्रभावना के लिये हैं।

जिससे भावना बनी रहे, वैसे श्वेताम्बर परम्परा में रजोहरण होता है, जो भेड़ के बाल अर्थात् ऊन से निर्मित होता है, वह भी परिमार्जन के काम आता है। एक और बात पढ़ने सुनने में आती है, आचार्य कुन्दकुन्द देव के बारे में कि उन्होंने गिद्ध के पंखों की पिच्छिका का भी प्रयोग किया, इसलिये वे गृद्धपिच्छाचार्य भी कहलाये।

अब सावधान हो जायें, वह समय आ गया है, पिच्छिका परिवर्तन का, जहाँ पर भी मुनिराज, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक एवं क्षुल्लिका के प्रभावना अंग के पालक इसका सहयोगी श्रावक अपने कर्तव्य का पालन करे, क्योंकि कर्तव्य ही धर्म की कसौटी है।

संघस्थ-आचार्य श्री विद्यासागर जी

दुनिया ने तांबे के बर्तन वाले पानी का लोहा माना

इससे डायरिया और डिसेंट्री से होने वाली मोतों को रोका जा सकता है

भारत में आदिकाल से ही तांबे के बर्तनों का उपयोग होता रहा है। ऐसी मान्यता रही है कि तांबे के बर्तन में रखा पानी स्वास्थ्यवर्द्धक होता है और इससे किसी भी तरह का संक्रमण होने की सम्भावना पूरी तरह से समाप्त हो जाती है। अब ब्रिटेन के एक माइक्रोबायोलॉजिस्ट ने भी कई परीक्षण करने के बाद इस बात की पुष्टि की है।

विश्व प्रसिद्ध विज्ञान नेचर में छपे एक अनुसन्धान के अनुसार ब्रिटेन की नार्थ अम्ब्रिया यूनिवर्सिटी के माइक्रोबायोलॉजिस्ट रॉब रीड ने अपनी भारत यात्रा के दौरान तांबे के बर्तन में रखे पानी की काफी तारीफें सुनी और यह जाना कि यह पानी बीमारियों से बचाता है। उन्होंने इस बात का परीक्षण करने का फैसला किया। यूनिवर्सिटी लौट कर रॉब ने अपने दो अन्य साथियों पूजा टंडन और संजय छिब्वर के साथ मिलकर कई प्रयोग किये। इस दल ने मिट्टी और तांबे के बर्तनों में ई-कोली रोगाणुओं वाला पानी भरा। इस पानी का ६, २४ और ४८ घण्टे बाद परीक्षण किया गया। ६ घण्टे बाद तांबे के बर्तन में रखे पानी में इन रोगाणुओं की संख्या में काफी कमी देखी गई। २४ घण्टे बाद पानी में नाम मात्र के रोगाणु पाये गये, वहीं ४८ घण्टे बाद इसमें रोगाणुओं का नामोनिशान भी नहीं था। रॉब ने सोसायटी फॉर जनरल माइक्रोबायोलॉजी की एडिनबरा में हुई बैठक को बताया कि रोगाणुओं का सफाया करने में तांबे (कॉपर) की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। असल में तांबे से बने बर्तनों में तांबे के साथ ही जस्ता (जिंक) भी होता है और जब इसमें पानी भरा जाता है, तो इसके कुछ कण पानी में मिल जाते हैं। ये कण ही पानी को सही मायने में साफ़ करने का काम करते हैं। रॉब ने बताया कि अगर विकासशील और अविाकसित देशों में रहने वाले लोग प्लास्टिक के बर्तनों की जगह तांबे के बर्तनों का उपयोग करते हैं, तो वहाँ हर साल डायरिया और डिसेंट्री से होने वाली, करीब २० लाख बच्चों की मौत को रोका जा सकता है।

दैनिक भास्कर, भोपाल दि. १३-४-०५ से साभार

शासनदेव पूजा-रहस्य

श्री रतनलाल जी कटारिया

श्री कटारिया जी की विशेषता यह है कि वे ग्रंथों को अमान्य ठहराने की अपेक्षा उनका आर्थ वचनानुसार अर्थ करके दूध का दूध और पानी का पानी कर देते हैं। शासनदेवों की पूज्यता और अपूज्यता को लेकर विवाद समाज में नया नहीं है और अब तक परिपाटी यह रही है कि जिन ग्रंथों में शासनदेवों की पूजा का विधान है, उन्हें भट्टारकप्रणीत कह कर अमान्य घोषित कर दिया जाता है। श्री कटारिया उन ग्रंथों की मान्यता को सुरक्षित रखते हुए उनके शास्त्रसम्मत अर्थ निकालने में सिद्धहस्त हैं। यह विशेषता उन्हें अपने स्व. पिताजी से विरासत में मिली है। श्री कटारिया के तर्कों पर विद्वान् निष्पक्ष रूप से विचार कर सकें, इसी पवित्र भावना के साथ हम उनकी यह रचना यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। वैसे यह तो समन्तभद्र आदि के ग्रंथों से हस्तामलकवत् स्पष्ट ही है कि सच्चे देव, शास्त्र और गुरु के अतिरिक्त अन्यो की पूजा सम्यग्दृष्टि के लिए निषिद्ध है।

इति पंचमहा पुरुषाः प्रणुता जिनधर्मवचन चैत्यानि ॥

चैत्यालयाश्च विमलां, दिशंतु बोधिं बुधजनेष्टाम् ॥ १० ॥

- चैत्यभक्ति (पूज्यपाद)

अरहंत सिद्ध साहूतितयं जिणधम्म वयण पडिमाइ ।

जिणणिलया इदिराए, णवदेवा दिन्तु मे बोहिं ॥

-भावत्रिभंगी

अर्थात् अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु के पंच परमेष्ठी (सचेतन) तथा जिनधर्म, जिनवाणी, जिन प्रतिमा, जिनालय ये चार (अचेतन) इस प्रकार नवदेव माने गये हैं।

ये सब वीतराग-स्वरूप होने से पूज्य और आराध्य हैं। इनके सिवा न तो और कोई वीतराग-स्वरूप हैं और न पूज्य आराध्य हैं।

इन नवदेवों में कोई भी देवगति (व्यंतर-ज्योतिष्क-भवनवासी-कल्पवासी) के देव नहीं हैं, जबकि शासनदेव व्यंतर जाति के यक्षदेव हैं जो वीतरागस्वरूप नहीं है, रागी द्वेषी हैं, अतः अपूज्य हैं।

पूज्यता संयम से आती है और देवगति में संयम का सर्वथा अभाव है। कुन्दकुन्दाचार्य ने दर्शनपाहुड गाथा २६ में कहा है:-

असंजदं न वंदे गंधविहीणो वि सो ण वंदिज्जो ॥ अर्थात्- असंयमी चाहे वह नग्न-दिगंबर ही क्यों न हो वंदनीय नहीं है? तब भला रागी द्वेषी और परिग्रही शासन देव-यक्ष कैसे पूज्य हो सकते हैं? अर्थात् कदापि नहीं।

जैनधर्म में रागद्वेष और इन्द्रिय विषय कषायों को जीतने वाले आराध्य हैं, रागीद्वेषी इन्द्रिय विषय कषायों के गुलाम देवगति के देवों को आराध्य-पूज्य बताना जैन संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध है।

देवगति के देवों को महान् और पूज्य जैनतर संप्रदायों में माना गया है, उनके शास्त्र इन देवों की विविध स्तुतियों से भरे पड़े हैं जबकि जैनधर्म ने इन देवी-देवताओं के जाल से मनुष्य को ऊपर उठा कर उसकी महान् आत्मिक मानवी शक्ति का यानि नर से नारायण तथा जन से जिन बनने की क्षमता का उसे भान कराया है। यही जैनधर्म की अन्य धर्मों से खास विशेषता है। इसी खूबी का लोप करना इसे विकृत करना एक तरह से जैनधर्म को ही समाप्त करना है।

संसार के समग्र प्राणियों में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। जैनधर्म में जहाँ देवों में ४ गुणस्थान तक ही माने हैं वहाँ मनुष्यों में १४ गुणस्थान तक माने हैं। शास्त्रों में अनेक कथायें आती हैं, जिनमें देवताओं द्वारा मनुष्यों की रक्षा और उनकी पूजा का वर्णन पाया जाता है। इस तरह जैनाचार्यों ने देवों को मनुष्यों का सेवक पूजक दूयोतित किया है, मनुष्यों को देवों का सेवक-पूजक नहीं।

तीर्थकरों के तपकल्याणक के प्रसंग में शास्त्रों में लिखा है कि भगवान् की पालकी को उठाने में जब देवों और मनुष्यों में विवाद उत्पन्न हो गया तो उसका निर्णय इसी बात पर हुआ कि- "जो भगवान् के साथ दीक्षित होने की संयम धारण करने की क्षमता रखते हों एवं भगवान् की जाति के हों यानि मानव जाति के (भूमि-गोचरी) हों वे ही

पालकी उठा सकते हैं"। इसमें देव परास्त हो गये और मनुष्यों ने ही सर्वप्रथम पालकी को उठाया।

इससे देवों की अपेक्षा मनुष्यों की महत्ता गुरुता और सर्वश्रेष्ठता का परिचय प्राप्त होता है।

जैनधर्म में तो वीतराग जिनदेव को छोड़कर अन्य सभी देवताओं की उपासना को देवमूढता (मिथ्यात्व) बताया है जैसा कि स्वामी समन्तभद्राचार्य ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में लिखा है-

वरोपलिप्सयाशावान्, रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत, देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

अर्थात् किसी कामना-प्रयोजन से भी रागीद्वेषी देवों की उपासना करना देवमूढता है।

इसका कारण यह है कि रागीद्वेषियों की उपासना रागद्वेष (संसार-दुःख) को ही बढ़ाती है जबकि वीतराग की उपासना वीतरागता (मोक्ष-सुख) को प्राप्त कराती है। यही जैन भक्ति का उद्देश्य और सार है।

प्रश्न : जिस तरह नव देवों में 'जिन वचन' गुणदेव हैं और उसके अधिष्ठाता देव श्रुतदेव या सरस्वती देवी पूज्य रूप में माने गये हैं उसी तरह 'जिनशासन' के अधिष्ठाता देव इन तथा कथित शासन देवों को मान लिया जाये और इन्हें पूज्य बताया जाये तो क्या बाधा है?

उत्तर : ऐसा किसी तरह संभव नहीं, क्योंकि ये शासन देव व्यंतर जाति के यक्ष हैं और इनकी उत्कृष्ट आयु करीब एक पल्लोपम मात्र है अतः ये गुण देव नहीं होने से अधिष्ठाता देव ही संभव नहीं है जबकि श्रुतदेव देवगति के देव नहीं हैं अतः गुणदेव होने से अधिष्ठाता देव हैं और श्रुत की तरह ही इनकी आयु की अनादि अनंत है। (श्री जैन शासनमनिंदूयमनाद्यनन्तम्, भव्यौध ताप शमनाय सुधा प्रवाहम् ॥) शासन देवों में २४ यक्ष और २४ यक्षियां हैं जिनके सब के अलग-अलग गोमुख चक्रेश्वरी आदि व्यक्ति रूप से संज्ञा वाची नाम न होकर गुणानुरूप नाम हैं। शासनदेव यक्षदेव होने से सचेतन है। जिस तरह एक म्यान में दो तलवार नहीं समा सकती उसी तरह यक्ष देवत्व में जिन शासनत्व नहीं समा सकता। सचेतन अशुद्ध पदार्थ में स्थापना नहीं हो सकती अतः कोई व्यंतर यक्ष कभी अधिष्ठातादेव (जिनशासन) नहीं बन सकता।

तिलोयपण्णत्ति (दिग.) तथा निर्वाणकलिका (श्वे.)

प्रभृति ग्रंथों में गोमुख चक्रेश्वरी आदि देवताओं को यक्ष नाम से ही संसूचित किया है कहीं भी शासन देव नहीं लिखा है। बाद के ग्रंथों में शासन के अधिष्ठाता रूप में नहीं किन्तु शासन की रक्षा करने वाले के अर्थ में ये शासनदेव कल्पित किये गए हैं। जैसा कि यशस्तिलक चम्पू में सोमदेव सूरि ने लिखा है- "ताः शासनाधिरक्षार्थं कल्पिताः परमागमे"।

इससे स्पष्ट है कि- ये स्वयं मूर्तमान "जिनशासन" नहीं हैं ये तो शासन के रक्षक कल्पित देव हैं। अगर इन्हें ही वास्तविक जिनशासन मान लिया जाये तो फिर जैनधर्म के अधिनायक जिनेन्द्र देव नहीं रहकर ये देवगति के यक्षदेव अधिनायक हो जायेंगे। फिर तो वह शासन भी जिनशासन न रहकर यक्षशासन हो जायेगा।

बाद में ग्रंथकारों ने इन यक्षों को 'शासनदेव' नाम अधिष्ठाता रूप से नहीं प्रत्युत जिनशासन के रक्षक रूप से दिया है। किन्तु यह भी व्यर्थ है क्योंकि पूर्वाचार्यों ने जैन-जगत (जिनशासन) के रक्षक दिग्पाल (लोकपाल) पहले से ही बता रखे हैं तब फिर ये और नये रक्षक क्यों ईजाद किये गये? क्या उन दिग्पाल-लोकपालों की रक्षकता में कोई कमी आ गई थी? इनके सिवा तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ४ के सूत्र ५ में बताया है कि- "त्रायस्त्रिंश लोकपाल वर्ज्याः व्यंतर ज्योतिष्काः" अर्थात्- व्यंतर और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश (पुरोहित) और लोकपाल (रक्षक) भेद नहीं होते। अतः ये शासन के रक्षक रूप में भी शासनदेव (व्यंतर-यक्ष) शास्त्र विरुद्ध सिद्ध होते हैं।

प्रश्न : 'जैनं जयति शासनम्' इस श्लोक में जो जैन शासन की जय की गई है वह 'जिनशासन' नवदेवों में कौन सा देव है? क्या वह कोई दसवां देव है?

उत्तर : नवदेवों से भिन्न कोई दसवां पूज्य देव नहीं है। शासन का एक अर्थ शास्त्र (जिनवचन) भी होता है। देखो हेमचन्द्र कृत 'अनेकार्थ संग्रह' कांड ३-शासनं नृपदत्तोर्व्यां शास्त्राज्ञा-लेख शास्तिषु ॥ ४५३ ॥

शासन और शास्त्र शब्द एक ही शास् धातु से बने हैं। अतः यहाँ जिनवचन ही जिनशासन है। जिनवचन के अधिष्ठाता देव श्रुतदेव ही वस्तुतः जिनशासन देवता है, ये मूर्ति रूप में हों चाहे शिलालेख या हस्तलिखित मुद्रित शास्त्र पुस्तक रूप में हों, पूज्य मान्य हैं इनके सिवा अन्य सब शासनदेव मिथ्या और अपूज्य हैं।

प्रश्न : शास्त्रों में जो श्री, ही, धृति, कीर्ति, बुद्धि,

लक्ष्मी आदि देवियों के नाम पाये जाते हैं, क्या ये पूज्य गुणदेवियाँ हैं?

उत्तर : जिस तरह मनुष्यों में लक्ष्मीबाई, शांति कुमारी, सरस्वती देवी, बुद्धिवल्लभ, कीर्तिधर आदि नाम पाये जाते हैं, नामानुसार उनमें वे साक्षात् पूर्ण गुण नहीं हैं, उसी तरह श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि नाम, देवियों में ही पाये जाते हैं। ये इन गुणों की साक्षात् मूर्तिमंत अधिष्ठात्री देवियां नहीं हैं। ये श्री, ह्री आदि ६ देवियां षट् कुलाचल वासिनी सचेतन देवियां हैं इसी से तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ३ सूत्र १९ में इनकी एक पल्य मात्र आयु बताया है देखो 'तन्निवासिन्यो देव्यः श्री ह्री घृति कीर्ति लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः'।

उत्तर पुराण पर्व ६३ में गुणभद्राचार्य ने इन्हें व्यंतरियां और इन्द्र को वल्लभा बताया है। यथा-

तेषामाद्येषु षट्स स्युस्ताः श्री ह्री धृतिकीर्तयः।

बुद्धि लक्ष्मीश्च शकस्य व्यन्तर्यो वल्लभांगनाः ॥ २० ॥

इससे स्पष्ट होता है कि ये गुण देवियां नहीं हैं, देवगति की व्यंतरियां है अतः पूज्य नहीं हैं (इन्हें कहीं-कहीं दिक्कुमारी और दिक्कन्यका भी लिखा है)

इन तथाकथित शासन देवों के मूल में ही गड़बड़ है इनकी पूजा की बात तो दूर है वह तो किसी तरह भी समीचीन नहीं हो सकती। इस विषय में और भी विशेष जानने के लिए हमारी पुस्तक "जैन निबंध रत्नावली" के निम्नांकित लेखों का अध्ययन कीजिये-

लेख नं. २८ - धरणेन्द्र पद्मावती।

लेख नं. ३० - प्रतिष्ठा शास्त्र और शासनदेव।

लेख नं. ३२ - दस दिग्पाल।

लेख नं. ३३ - इसे भक्ति कहें या नियोग।

लेख नं. ४० - चौबीस यक्ष यक्षियां।

इनके सिवा "पद्मावती पूजा मिथ्यात्व है" नाम का हमारा ट्रेक्ट भी पढ़िये।

प्रश्न : शासन के भक्त-देवता मानकर कृतज्ञता रूप में अगर शासन देवों की पूजा की जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर : शासन के भक्त होने में ही अगर शासन देव पूज्य माने जाय तो फिर सभी सम्यक्वती व्रती तिर्यच, मनुष्य भी पूज्य हो जायेंगे किन्तु पूज्यता भक्ति से नहीं आती वह तो संयम से आती है और देव संयम के नितांत अयोग्य हैं अतः

वे सर्वथा अपूज्य हैं। भक्ति करना कोई अहसान नहीं है जो कृतज्ञता ज्ञापन की जाये। शासन देवों की जिनभक्ति में श्रद्धा के बजाय केवल नियोग है जो उन की ड्यूटी-कर्तव्य है।

प्रश्न : जिस तरह चक्रवर्ती के परिवार का पूजन न करने पर चक्रवर्ती से सेवकों को फल की प्राप्ति नहीं होती उसी तरह शासन देवों की पूजा किये बिना जिनेन्द्र से फल प्राप्ति नहीं होती अतः शासनदेव पूजा विधेय है।

उत्तर : शासनदेवों को जिनेन्द्र के परिवार के बताना जिनेन्द्र को देवगति का देव (असंयमी) बताना है और शासन देवों को मनुष्यगति का संयमी मनुष्य बताना है यह उल्टी गंगा बहाना है जो जिनेन्द्र तथा देव दोनों का ही अवर्णवाद है। ऐसे अवर्णवादों से कोई पूजा कभी विधेय नहीं हो सकती। जिनेन्द्र तीन लोक के स्वामी हैं और शासनदेव उनके किंकर हैं। मालिक और नौकर को एक बताना मूढता है।

प्रश्न : जिस तरह चपरासी या अहलकार को कुछ रकम देने से सरकारी काम सिद्ध हो जाता है उसी तरह शासनदेवों को अर्घ देने से धर्म कार्य सिद्ध हो जाता है।

उत्तर : राज्य कर्मचारी को व्यक्तिगत रकम देना रिश्वत है। इसका देने और लेने वाला दोनों कानूनन अपराधी है। उसी तरह शासनदेवों को अर्घ प्रदान करना भी जैन शासन में धार्मिक जुर्म है।

प्रश्न : जिन प्रतिमा के साथ शासन देवता क्षेत्रपाल, नवग्रह, गंधर्व, यक्ष, नाग, किन्नरादि की मूर्तियां भी पाई जाती हैं अतः ये सब देवगण पूज्य हैं।

उत्तर : जिन प्रतिमा के साथ उक्त देवताओं की मूर्तियां जिनेन्द्र के सेवक, पूजक भक्त रूप में प्रदर्शित की गई है। जैनेतर संप्रदायों में इन देवी-देवताओं को बहुत बड़ा बताया गया है, नशास्त्रकारों ने उन्हीं देवी-देवताओं को जिनेन्द्र के सेवक रूप में प्रस्तुत कर जिनेन्द्र की महत्ता-देवाधिदेवता प्रदर्शित की है।

साथ होने से ही कोई बराबर हो जाता हो तो अनेक जिनप्रतिमाओं के ऊपर कलश करते हाथी, आसन रूप में कमल और सिंह, पादपीठ में हिरण और २४ चिह्नों के रूप में विविध पशु-पक्षी, वृक्षादि अंकित रहते हैं तो ये सब तिर्यञ्च भी पूज्य हो जायेंगे। मूर्ति पर मच्छर, मक्खी, भ्रमर, मूषक आदि भी आकर बैठ जाते हैं तो ये भी पूज्य हो जायेंगे। मालिक के पास बैठकर मालिक की पगचम्पी करने वाला नौकर भी मालिक हो जायेगा किन्तु ऐसा नहीं है

मालिक, मालिक ही रहता है और नौकर, नौकर ही रहता है। इसी तरह जिनेन्द्र के सेवक देवतागण जिनेन्द्र के पास स्थित होने से पूज्य नहीं हो जाते वे तो पूजक ही रहते हैं।

फलों के साथ रहने वाले छिलके फलों के रक्षक और फल ही कहलाते हुए भी अनुपयोगी आग्राह्य मलरूप माने जाते हैं, वही स्थिति शासन देवों की समझनी चाहिये। चाहे वे जिनप्रतिमा के साथ हों चाहे अलग, वे हमेशा अपूज्य ही हैं।

प्रश्न : यागमण्डल में अरिहंत के साथ भवनत्रिक देवों की स्थापना क्यों की जाती है? इससे क्या भवनत्रिक देव (भवनवासी, व्यंतर-ज्योतिष्क) पूज्य नहीं होते?

उत्तर : यागमण्डल के मध्य में अरिहंतादि परमेष्ठी और चारों तरफ भवनत्रिक देवों की स्थापना समवशरण सभा की नकल है। जिस तरह समवशरण सभा के मध्य में अरिहंत विराजमान होते हैं और चारों तरफ १२ सभाएँ होती हैं, जिनमें पूज्य तो अरिहंत होते हैं, बाकी तो सब पूजक होते हैं। उसी तरह यागमण्डल की रचना में भी पूज्य तो अरिहंतादि परमेष्ठी ही होते हैं बाकी अन्य सब पूजक होते हैं। अकेले सभापति से सभा नहीं कहलाती। सभी सभासदों (श्रोतागण) से ही सुशोभित होती है इसी तरह यागमण्डल में शोभा और परिपूर्णता की दृष्टि से भवनत्रिक देवों को सम्मिलित किया गया है। इसमें पूज्यता का कोई प्रश्न नहीं है।

प्रश्न : फिर भी कुछ प्रतिष्ठा-अभिषेक पाठादि ग्रंथों में शासनदेवों (भवनत्रिक) को अर्घ्य समर्पण करने का कथन क्यों पाया जाता है? यथा-

१. यागेस्मिन्नाक नाथ ज्वलन पितृपते नैकषेय प्रचेतो।
वायोरैदेश शेषोदुप सपरिजना यूयमेत्य ग्रहाग्राः ॥
मंत्रैर्भूः स्वः स्वर्धाद्यैरघिगत-बलयः स्वासुदिक्षूपविष्टाः।
क्षेपीयः क्षेमदक्षाः कुरुत जिनसवोत्साहिना विघ्नशांतिम् ॥
१३ ॥

- सोमदेवकृत अभिषेक पाठ (यशस्तिलकचम्पू)

२. पूर्वाशादेश हव्यासन महिषगते नेत्र्रते पाशपाणे।
वायो यक्षेन्द्र चन्द्राभरण फणिपते रोहिणीजीवितेश ॥
सर्वेप्यायात यानायुध युवति, जनै साधर्मो भू भूर्वः स्वः।
स्वाहा गृण्हीत चार्घ्यं चरुममृतमिदं स्वास्तिकं यज्ञभागं ॥ ११ ॥

- पूज्यपाद अभिषेक पाठ

३. आवाहिऊण देवे सुरवइ सिहि कालणेरिए वरुणे परणे

जखे वसूली सपिय सवासणे ससत्थे य ॥ ४३९ ॥
दाऊण पुज्जदव्यं बलि चरुयं तहय जण्ण भायं च।
सव्वेसिं मंते हिय वीयक्खर णाम जुत्तेहिं ॥ ४४० ॥

- देवसेन कृत भावसंग्रह

इनमें दशदिग्पालों का आह्वान कर उनसे अर्घ्यादि पूजाद्रव्य (यज्ञांश) ग्रहण करने का निवेदन किया गया है इसमें क्या तात्पर्य रहस्य सन्निहित है?

उत्तर : उपलब्ध प्रतिष्ठापाठों में वसुनंदिश्रावकाचार के अन्तर्गत ६० गाथाओं का प्रतिष्ठा प्रकरण ही प्राचीन है अन्य (आशाधरादिकृत) सब उसके बाद के हैं। वसुनंदि प्रतिष्ठा प्रकरण में कहीं भी शासनदेवों (भवनत्रिक) को अर्घ्य समर्पण का कोई कथन नहीं है। बाद में प्रतिमा अभिषेक पाठादि ग्रंथों में एक नई शैली अपनाई है उसका तात्पर्य भी शासनदेव पूजा नहीं है किन्तु सौधमेन्द्र द्वारा भवनत्रिक देवों को अर्घ्य समर्पण जिनेन्द्रदेव की पूजा के लिए किया गया है अर्थात् इन्द्र भगवान् का पंच कल्याणक महोत्सव मनाता है अगर वह अकेला मनाये तो कोई ठाटवाट नहीं रहता। अतः इन्द्र अपनी देवगति के चतुर्णिकाय देवों का आह्वान करता है और भगवान् की पूजा करने के लिए उन सबको अर्घ्य-पूजाद्रव्य प्रदान करता है इसे ही यज्ञांशदान (पूजाद्रव्य के हिस्से का देना) कहा गया है जो सामूहिक (सम्मिलित) पूजा का अंग समझना चाहिए। आज भी ऐसी ही शैली नित्यपूजा और मण्डल विधान पूजा में ही दृष्टिगत होती है- पूजक मनुष्य मंदिर में आगत अपने साधर्मी भाईयों को अपने पूजाथाल में से जिनपूजा के लिए अर्घ्य समर्पण करता है। जिस तरह यहाँ साधर्मियों को अर्घ्य समर्पण साधर्मी पूजा नहीं है किन्तु वह जिनपूजार्थ है, उसी तरह प्रतिष्ठा अभिषेकादि ग्रंथों में इन्द्र द्वारा भवनत्रिकों को अर्घ्य समर्पण भवनत्रिकदेव-पूजा नहीं है लेकिन वह भी जिनपूजार्थ ही है।

ऊपर जो ३ ग्रन्थ-प्रमाण दिये हैं, उनमें अर्घादि द्वारा दिग्पालों को पूजने का तृतीया विभक्ति परक कथन नहीं है किन्तु दिग्पाल अर्घादि को ग्रहण करें ऐसा द्वितीया विभक्ति परक कथन है। ऐसा ही कथन अन्य अभिषेक पाठादि में है। इनमें स्पष्ट और सुसंगत रूप से सिद्ध है कि इन्द्र द्वारा दिग्पालादि को अर्घ्य समर्पण जिनपूजार्थ है। स्वयं दिग्पालों की पूजा के लिए नहीं।

प्रश्न : आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमं।

ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यांतु यथास्थितिं ॥

विसर्जनपाठ के इस श्लोक में तो देवों का आह्वान उनकी भक्ति पूर्वक पूजा करने की दृष्टि से बताया गया है यह कैसे?

उत्तर : इसमें “ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या” पाठ ही गलत है वह बदला हुआ है। प्राचीन अर्वाचीन अनेक हस्तलिखित गुटकों में इस जगह शुद्ध पाठ “ते जिनाभ्यर्चनं कृत्वा” पाया जाता है। हमारे पास शेरगढ़, हिंडोली, बसवा, चांदखेड़ी से प्राप्त कुछ हस्तलिखित गुटके हैं उन सब में भी यही “ते जिनाभ्यर्चनं कृत्वा” शुद्ध और सुसंगत पाठ पाया जाता है। यही शुद्ध पाठ रावजी सखाराम दोशी शोलापुर द्वारा प्रकाशित “शासनदेव पूजा के अनुकूल अभिप्राय” नामक ट्रेक के पृ. ७१ और ७४ पर पाया जाता है इस पाठ के विषय में वहाँ पं. बंशीधरजी शास्त्री शोलापुर वालों ने लिखा है कि- “यह पाठ इधर के पूजापाठों में व प्रतिष्ठा पाठों में तथा पुरानी हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है- यह पाठ सिद्धांत अनुकूल और शब्दशास्त्र से भी निर्दोष है।”

हमारे पास के एक गुटके में यह विसर्जन श्लोक लघु अभिषेक पाठ का बताया गया है वहाँ लिखा है-

आहुता ये पुरा देवा अब्धभागा यथाक्रमं।
ते जिनाभ्यर्चनं कृत्वा सर्वे यान्तु यथास्थितं ॥

स्वस्थानं गच्छ गच्छ पुष्पाक्षत वर्षेण सर्वांमर विसर्जनं।

इति अभिषेकः समाप्तः (शायद यह अभयनंदि कृत लघुस्नपन (श्रेयोविधान) का विसर्जन श्लोक हो किन्तु मुद्रित लघुस्नपन में यह श्लोक नहीं पाया जाता है सम्भवतः छूट गया हो)

इस शुद्ध श्लोक का सही अर्थ इस प्रकार है- “जिन देवों का पहले आह्वान किया गया था और जिन्होंने (अर्हत्पूजार्थ) यथाक्रम से अपना-अपना पूजाद्रव्य भाग प्राप्त कर लिया वे सब जिन-पूजा करके अपने-अपने स्थान को जावें।”

इस कथन से सुस्पष्ट है कि-इन्द्र द्वारा देवगण जिनेन्द्र की पूजा के लिए ही बुलाये जाते हैं। स्वयं उन देवों की पूजा के लिये नहीं और उन देवों को पूजाद्रव्य भी जिन पूजा के लिये ही अर्पण किया जाता है स्वयं उनकी पूजा के लिए नहीं।

क्रमशः

महावीर जयन्ती स्मारिका १९७५

(प्रकाशक - राजस्थान जैन सभा, जयपुर) से साभार

भगवान् पद्मप्रभ जी

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र की कौशाम्बी नगरी में इक्ष्वाकुवंशी काश्यपगोत्री धरण नाम के राजा राज्य करते थे। उसकी सुसीमा नाम की रानी थी। कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन उसने अपराजित विमानवासी अहमिन्द्र को तीर्थकर सुत के रूप में जन्म दिया। जब सुमतिनाथ भगवान् की तीर्थ परम्परा के नब्बे हजार करोड़ सागर बीत गये तब भगवान् पद्मप्रभ उत्पन्न हुए थे। तीस लाख पूर्व उनकी आयु थी, दो सौ पचास धनुष ऊँचा शरीर था। उनकी आयु का जब एक चौथाई बीत चुका तब उन्होंने राज्य प्राप्त किया। जब उनकी आयु सोलह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व की रह गई तब किसी एक दिन पद्मप्रभ महाराज राजमहल में सुखपूर्वक बैठे हुए थे कि उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके प्रिय हाथी का अस्वस्थता बढ़ने से अचानक प्राणान्त हो गया है। इस घटना से जीवन की क्षणभंगुरता जानकर जातिस्मरण से अपने पूर्व भवों का ज्ञान प्राप्त कर वे संसार से विरक्त हो गये और मनोहर नामक वन में पहुँचकर बेला का नियम लेकर कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी के दिन संध्या काल में एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण कर ली। पारणा के दिन पद्मप्रभ स्वामी वर्धमान नगर में प्रविष्ट हुए। वहाँ राजा सोमदत्त ने उन्हें आहार दान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। इस तरह तपश्चरण करते हुए छद्मस्थ अवस्था के छः माह बिताकर अपने ही दीक्षा वन में शिरीष वृक्ष के नीचे वह ध्यानलीन हुए। तदनन्तर घातिया कर्मों का नाश कर चैत्र शुक्ल पौर्णमासी के दिन केवलज्ञान प्राप्त किया। भगवान् पद्मप्रभ के समवशरण की रचना हुई, जिसमें तीन लाख तीस हजार मुनि, चार लाख बीस हजार आर्थिकायें, तीन लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यच थे। इस प्रकार धर्मोपदेश देते हुए आर्य क्षेत्रों में विहार कर भगवान् सम्मेदशिखर पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक माह का योग निरोध कर एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमा योग धारण किया। तदनन्तर फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी के दिन शाम के समय अघातिया कर्मों का नाश कर निर्वाण प्राप्त किया।

मुनि श्री समतासागर- कृत 'शलाका पुरुष' से साभार

ऐलक-चर्या

क्या होनी चाहिये और क्या हो रही है?

स्व. पं. मिलापचन्द्र जी कटारिया

यह तो हुई संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों की बात। अब हम इसकी पुष्टि में भाषा ग्रन्थों के भी तीन प्रमाण लिख देते हैं-

1. पं. बुधजन जी कृत तत्त्वार्थबोध (पृ. 159) में लिखा है-

अईलक महापुनीत, केश लौंचे निज करतैं।
ले करपात्र अहार, बैठि इक श्रावक घरतैं ॥ 82 ॥

2. दौलत क्रिया कोश में लिखा है कि-

क्षुल्लक, जीमें पात्र मंझार, ऐलि करे करपात्र अहार।
मुनिवर ऊभा लेइ अहार, ऐलि अर्यका बैठा सार ॥ 927 ॥
- प्रतिमावर्णनाधिकार

3. पं. भूषणदास जी कृत पार्श्वपुराण में-

यह क्षुल्लक श्रावक की रीत, दूजो ऐलक अधिक पुनीत।
जाके एक कमर कौपीन, हाथ कमण्डल पीछी लीन ॥ 197 ॥

विधिसों बैठि लेहि आहार पाणिपात्र आगम अनुसार।
करे केस लुंचन अतिधीर, शीत धाम सब सहै शरीर ॥ 198 ॥

पाणिपात्र आहार, करै जलांजुलि जोड़ मुनि।
खडो रहै तिहिवार, भक्तिरहित भोजन तजै ॥ 199 ॥

एक हाथ में ग्रास धरि, एक हाथसों लेय।
श्रावक के घर आयके, ऐलक असन करेय ॥ 200 ॥

यह ग्यारह प्रतिमा कथन, लिख्यो सिधांत निहार।
और प्रश्न बाकी रहे, अब तिनि को अधिकार ॥

- 9वाँ अधिकार ॥

तीनों ही भाषा ग्रन्थों में ऐलक के लिए बैठे भोजन लिखा है। साथ ही दौलत क्रिया कोश में आर्यिका के लिए भी बैठे भोजन करने का विधान किया है। भगवती आराधना अध्याय 1 गाथा 83 की वचनिका में पण्डित प्रवर सदासुख जी ने भी आर्यिका के लिए बैठकर आहार ग्रहण करने की बात लिखी है। आर्यिका उपचार से महाव्रती होती हैं, जबकि क्षुल्लक-ऐलक पंचम गुणस्थानवर्ती अणुव्रती ही होता है। ऐसी हालत में जब आर्यिका तक बैठे भोजन करती हैं तो क्षुल्लक-ऐलक खड़े भोजन कैसे कर सकता है? यह तो साधारण बुद्धि जीवी भी सोच सकता है इसीलिए साधु के

28 मूलगुणों में 'स्थिति भोजन' नाम का एक मूलगुण बताया है, अन्य के नहीं। स्त्रियों में क्षुल्लिका और आर्यिका पद ही होता है ऐलिका पद नहीं।

पं. भूधरदास जी ने एक नई बात और लिखी है। वे लिखते हैं कि- मुनि जो पाणिपात्र में आहार करते हैं वे अंजुली जोड़कर करते हैं परन्तु ऐलक अंजुली जोड़कर नहीं करते। वह तो एक हाथ पर धरे हुए ग्रास को अपने दूसरे हाथ से उठा कर खाता है। न मालूम भूधरदास जी ने यह बात किस आधार पर लिखी है। सम्भव है कि यह ठीक हो क्योंकि इस विषय के ग्रन्थों में सामान्यरूप से पाणिपात्र आहार का उल्लेख मिलता है। दोनों ही तरह को पाणिपात्र कह सकते हैं। विद्वानों को इसकी खोज करनी चाहिए। पं. भूधरदास जो इस कथन को सिद्धांत के अनुसार लिखा बताते हैं।

यहाँ पर एक आक्षेप का समाधान करना अनुचित न होगा, कुछ भाई कहते हैं कि "अगर ऐलक मुनि की तरह खड़े होकर करते हैं तो एक ऊँची क्रिया करते हैं, इसमें बुराई क्या हुई" इसके उत्तर में पहले यह जान लेना जरूरी है कि मुनि खड़े भोजन क्यों करते हैं। इसका कारण पद्मनन्द पंच विशंतिका में लिखा है कि-

यावन्मे स्थितिभोजनेऽस्ति दृढता पाण्योश्च संयोजने,
भुञ्चेताबदहं रहाम्यथ विधावेषा प्रतिज्ञा यतेः।
कायेऽप्यस्पृहचेतसोन्यविधिषु प्रोल्लासिनः सन्मुने,
नह्येतेन दिविस्थिति न नरके संपद्यते तद्विना ॥ 43अ. ॥

अर्थ : जब तक मेरे खड़ा रहकर भोजन करने और दोनों हाथों के मिलाने में दृढता रहेगी तभी तक आहार करूँगा अन्यथा त्याग करूँगा ऐसी यति की प्रतिज्ञा होती है। इसी प्रतिज्ञा को दिखाने के लिए मुनिजन दोनों हाथ की अंजुलि मिलाये हुये खड़े रहकर भोजन करते हैं। वरना इससे कोई शरीर में निःस्पृही और समाधिमरण में उत्साही मुनि को स्वर्ग नहीं मिलता और न उसके बिना नरक ही।

निम्न श्लोकों में सोमदेव ने भी ऐसा ही कहा है-

न स्वर्गाय स्थितेर्भुक्ति न श्वभ्रयास्थितेः पुनः।
किन्तु संयमिलोकेऽस्मिन् सा प्रतिज्ञार्थमिष्यते ॥

पाणिपात्रं मिलत्येतच्छक्तिश्च स्थिति भोजने।
यावत्तावदहं भुञ्जे रहाम्याहारमन्यथा ॥

- 'तीसरा काव्य'

मूलाचार संस्कृत पृष्ठ 44, अनगार धर्माभूत संस्कृत पृष्ठ 682, आचारसार पंचमोधिकार श्लोक 122 में भी मुनि के स्थिति भोजन में यही कारण बताया गया है।

पाठक समझ गये होंगे कि मुनि जो खड़े आहार लेते हैं उसमें कितनी भीषण प्रतिज्ञा है। ऐसे कठिन अनुष्ठान के लिये श्रावक को अयोग्य समझकर ही ग्रन्थों में 11वीं प्रतिमाधारी के लिए बैठे भोजन की आज्ञा प्रदान की गई है और इसी आधार पर शायद भूधरदास जी ने पार्श्वपुराण में ऐलक के लिये अंजुली जोड़कर भोजन करने का भी उल्लेख नहीं किया मालूम होता है। जो ऐलक कौपीन मात्र को नहीं त्याग सकता उसमें इतना साहस कहाँ से आ सकता है? और इसीलिये उसके आतापनादि योगों का भी निषेध शास्त्रों में किया गया जान पड़ता है। खुद पं. वामदेव ने भावसंग्रह में 11वीं प्रतिमा वाले के वीरचर्या न होने का कारण कौपीन मात्र परिग्रह बतलाया है। यह वाक्य इस प्रकार है-

'वीरचर्या न तस्यास्ति वस्त्रखंड परिग्रहात्'। 548।

सोचने की बात है अगर ऊँची क्रिया के बहाने शास्त्रविरुद्ध प्रवृत्ति की जायेगी तो आर्यिका, क्षुल्लक व ब्रह्मचारीगण भी खड़े भोजन करना प्रारम्भ कर देंगे फिर उन्हें कैसे रोका जाएगा। अतः शास्त्रानुसार प्रवृत्ति करने में ही सबका हित है इसी से त्यागी वर्ग में अनुशासन बना रहेगा, अन्यथा स्वच्छन्दता फैल जायेगी। अगर ऐलक शुद्ध मन से ऊँची क्रिया पालने की भावना रखते हैं तो साहस करके

लंगोटी छोड़ दें फिर उन्हें कोई खड़े भोजन से रोकने वाला नहीं मिलेगा।

इसप्रकार इस विषय में जितना भी विचार किया जाता है किसी भी तरह ऐलक के लिये खड़ा भोजन सिद्ध नहीं होता। इस विषय के सभी संस्कृत, प्राकृत के उपलब्ध ग्रन्थ देखे गये उनमें कोई एक भी ऐलक को खड़े आहार की आज्ञा नहीं देता और किसी में भी यह लिखा नहीं मिलता कि ऐलक के वास्ते पर्वतिथियों में प्रोषधोपवास करने का नियम नहीं है। इतना विवेचन किये बाद भी यदि किसी अर्वाचीन मामूली ग्रन्थ में इसके विरुद्ध लिखा मिल जावे तो वह प्रमाण नहीं माना जा सकता। क्योंकि आधुनिक किसी भी ग्रन्थ का कोई भी शास्त्रीय विधान तब तक मान्य नहीं हो सकता जब तक कि उसका समर्थन पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों से न होता हो। मुझे उस वक्त बड़ा आश्चर्य होता है, जब मैं वर्तमान के कुछ पण्डितों की लिखी हुई छोटी-मोटी पुस्तकों में ऐलक के लिए खड़ा भोजन का कथन पढ़ता हूँ। बगैर शास्त्रों के देखे यों ही किसी सुनी सुनायी बात को शास्त्र का रूप दे देना बहुत ही बुरा है ऐसी पद्धति पण्डितों को शोभा नहीं देती।

जं. ऐलक मुनियों की बराबरी करने के लिये पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों में आज्ञा न होते भी खड़ा भोजन करता है और पर्व तिथियों में उपवास नहीं करता वह शास्त्र विहित चर्या नहीं करता है। उसकी इस प्रवृत्ति का विचारशील शास्त्रवेत्ताओं को पर्याप्त विरोध करना चाहिये। विज्ञानों की उपेक्षावृत्ति से ही शास्त्र विरुद्ध रीतियों का जन्म होता है। इति।

'जैन निबन्ध रत्नावली' से साभार

- △ सज्जन मनुष्य धर्म कार्य में अनर्थ के कारणभूत आलस को कभी नहीं किया करते हैं।
- △ विद्वान मनुष्य मित्र उसी को बतलाते हैं, जो यहाँ उसे हितकारक पवित्र धर्म में प्रवृत्त करता है।
- △ सज्जन मनुष्य पाप से उत्पन्न हुए दुःख को देखकर उस पाप का परित्याग करते हैं।
- △ धर्म और अधर्म के फल को प्रत्यक्ष में जानकर विवेकी जीव सब प्रकार से अधर्म का परित्याग करते हुए निरन्तर धर्म किया करते हैं।
- △ जो जीव क्षमा के आश्रय से क्रोध को, मृदुता के आश्रय से मान को, ऋजुता के आश्रय से माया को तथा संतोष के आश्रय से लोभ को नष्ट कर देता है, उसके ही धर्म रहता है।

मुनि श्री अजितसागर-कृत 'वीरदेशना' से साभारे

बीना (बारहा) का विस्मृत कला-वैभव

स्व. डॉ. श्री कस्तूर चन्द जी जैन

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह (म. प्र.)

मध्यप्रदेश के पुरातात्विक मानचित्र पर बीना बारहा का नाम अभी-अभी उभरा है। बुन्देलखण्ड की धर्म-प्राण जनता इस देवभूमि की अतिशय क्षेत्र के रूप में स्वीकार कर अपनी पूजा का अर्घ्य चढ़ाती रही है। शताब्दियों से महावीर तथा शांतिनाथ की विशाल चमत्कारी प्रतिमाओं के इर्द-गिर्द स्थानीय लोक-मानस अपने सनातन पौराणिक विश्वासों का जाल बुनता रहा है। भगवान् महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव वर्ष में जैन तीर्थक्षेत्रों के इतिवृत्त संकलन की प्रकाशन योजना के अंतर्गत इस क्षेत्र का व्यवस्थित विवरण श्री बलभद्र जैन द्वारा भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ ग्रन्थ में पहली बार प्रस्तुत किया गया है। सम्प्रति श्रीमज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव के परिप्रेक्ष्य में विद्वानों का ध्यान इस क्षेत्र में फैली हुई पुरासम्पदा की ओर आकृष्ट हुआ है। सुना है, मध्यप्रदेश शासन की ओर से भी व्यापक स्तर पर सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ हो चुका है। आशा की जानी चाहिये कि राजा वेणु की इस ध्वस्त अभिशप्त कला-नगरी को समुचित महत्त्व और संरक्षण प्राप्त होगा।

सागर जिले की रहली तहसील के अंतर्गत देवरी से 8 किलोमीटर दूर नौरादेही अभ्यारण्य में सुखचैन नदी के किनारे बीना-बारहा अतिशय क्षेत्र अवस्थित है। बीना और बारहा दो निकटवर्ती गांव हैं, जो अब एक ही नाम से प्रायः जाने जाते हैं। बीना-बारहा अंचल में बसे हुये मड़खेरा, ईसुरपुर, रानीताल, खैरी आदि गांव मिलकर इस सम्पूर्ण क्षेत्र की एक पुरातात्विक इकाई बनाते हैं। इस क्षेत्र में विकीर्ण मूर्ति और स्थापत्य के नमूनों से आभास होता है कि मध्ययुग में यह जैन और वैष्णव साधना का कोई बड़ा अच्छा केन्द्र रहा होगा। वैष्णव और जैन देव मण्डल की समन्वय-साधना का यह केन्द्र हमारी धार्मिक सहिष्णुता का अनुपम उदाहरण है।

बीना अथवा वीणा नगर की स्थापना राजा वेणु ने की थी-इस आशय की अनुश्रुतियां, दंत कथायें और प्रवाद इस क्षेत्र में प्रचलित हैं। राजा वेणु की पत्नि कमलावती के पराक्रम की अनेक कथायें भी कही सुनी जाती हैं। इस गौड़ कालीन लोकप्रिय शासक के राजमहल के ध्वंसावशेष भी यहाँ प्राप्त होते हैं। किन्तु इस वैभवपूर्ण नगर का प्राचीनतम

उल्लेख हमें जंबुदीवपण्णत्ति में मिलता है। आचार्य पद्मनंदि (दसवीं शती ईस्वी) ने बाराह, बारहा अथवा बारा नगर के रूप में इसका उल्लेख किया है। उस समय यह नगर परियत्त अथवा परियात्र देश के अंतर्गत था और धनधान्य से पूर्ण इस नगर में रहकर ही आचार्य पद्मनंदि ने जंबुदीवपण्णत्ति की रचना की थी। स्वर्गीय पंडित नाथूराम प्रेमी का यह अनुमान तर्क संगत नहीं है कि बारा नगर वर्तमान कोटा (राजस्थान) के निकट स्थित करना है। आचार्य हेमचन्द्र के साक्ष्य से हमें यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पारियात्र देश विन्ध्याचल के उत्तर में अवस्थित था। उत्तरोविन्ध्यात्पारियात्रः। अतः पारियात्र स्थित बारा नगर की संगति विन्ध्यभूमि बुन्देलखण्ड के बीना-बारहा से बैठती है, राजस्थान से नहीं। राजस्थान के बारा नगर की ऐतिहासिकता भी संदिग्ध है, जबकि पूरा साक्ष्य बीना-बारहा के अस्तित्व को नवीं-दसवीं शताब्दी ईस्वी तक पीछे ले जाता है।

बीना-बारहा का मूर्ति शिल्प तीन भागों में बांटा जा सकता है-तीर्थकर प्रतिमायें, देव प्रतिमायें तथा अन्य स्फुट मूर्तियाँ। तीर्थकर प्रतिमाओं में हम सर्वप्रथम गंधकुटी स्थित उस सर्वतोभद्र प्रतिमाकृति का उल्लेख करना चाहेंगे जो तीन दिशाओं में तीर्थकर अंकन के साथ चौथी दिशा में एक साधु मूर्ति का अंकन करती है। सर्वतोभद्र शिल्प-परम्परा का यह एक असाधारण स्तम्भाकार है। स्तम्भाकार चतुर्मुखी सर्वतोभद्रिका में तीन दिशाओं से तीर्थकर मूर्तियों के साथ चौथी दिशा से एक साधु-मूर्ति का प्रवेश, निश्चय ही जैन-शिल्प के इतिहास की एक असाधारण घटना है। सामान्यतः समवशरण सभा के मध्य स्थित गंधकुटी में सर्वतोमुख तीर्थकर मूर्तियां अंतरिक्ष विराजमान होती हैं। धर्मचक्र के प्रवर्तन का अधिकार और समवशरण की विभूति तीर्थकर को ही प्राप्त है मुनि को नहीं इसलिये तीर्थकर प्रतिमा के मस्तक के ऊपर त्रिछत्र होता है। किन्तु प्रस्तुत अंकन में तीर्थकर मूर्तियों के साथ साधु मूर्ति भी त्रिछत्रधारी है और उसके पादपीठ में पीछी और कमण्डलु उत्कीर्ण हैं। साधु ध्यान लीन हैं। उनके ऊपर उठे हुये दाहिने हाथ में माला है और बायां हाथ नीचे की ओर अंगुलि से जापरत उत्कीर्ण है। श्री बलभद्र जैन ने

कदाचित् असावधानी वश ही इस साधु के एक हाथ में शास्त्र का उल्लेख किया है और इसका दूसरा हाथ उपदेश मुद्रा में अवस्थित बताया है।

सर्वतोभद्रिका की विवेच्य साधु मूर्ति क्या एक रहस्य बनकर ही उपस्थित रहेगी? समाज की उदासीनता या कलाकार की असावधानी का एक अपवाद स्वरूप उदाहरण बताकर इसके साथ न्याय नहीं किया जा सकता। मेरी धारणा है कि तीर्थंकर सम पूज्य यह मूर्ति कुंदकुंदाचार्य (पहली सदी) अथवा आचार्य पद्मनन्दि की स्मृति को समर्पित है जिन्होंने बारा नगर को अपने चरणारविंद से पवित्र किया था। स्वर्गीय पंडित नाथूराम प्रेमी ने ज्ञान प्रबोध नामक एक हिन्दी ग्रन्थ का उल्लेख किया है जिसमें कुंदकुंदाचार्य को बारापुर के एक धनी श्रेष्ठी का पुत्र बताया गया है नंदिसंघ की पट्टावली से ज्ञात होता है कि बारा में भट्टारकों की एक गद्दी भी रही है जो पद्मनंदि की परम्परा को लगभग एक शताब्दी तक अक्षुण्य बनाये रही है। अतः यह अनुमान निराधार न होगा कि बारहवीं शताब्दी की बारा स्थित भट्टारक पीठ ने इस सर्वतोभद्रिका की स्थापना की थी और उसमें कुंदकुंदाचार्य अथवा अपनी पीठ के प्रतिष्ठापक आचार्य पद्मनंदि को स्थान दिया था। निश्चय ही सर्वतोभद्रिका की साधु मूर्ति किसी असाधारण आचार्य परमेष्ठी की स्मृति को उजागर करती है।

बीना-बारहा की तीर्थंकर मूर्तियों में मामा भनेज के नाम से विख्यात महावीर की 13 फुट ऊँची पद्मासन मृण्मूर्ति और शांतिनाथ मंदिर की 16 फुट खड्गासन पाषाण प्रतिमा उल्लेनीय है। लांछन युक्त शांतिनाथ प्रतिमा कदाचित् सन् 1189 ईस्वी के दानवीर पाड़ाशाह द्वारा प्रतिष्ठित कराई गई है क्योंकि इसी आकार-प्रकार शिल्प और तालमेल की शांतिनाथ प्रतिमायें उसके द्वारा अहार, थूबौन, बजरंगगढ़ पुरीलागिरि आदि तीर्थों पर प्रतिष्ठित कराई गई थी। ये सीधी और सपाट मूर्तियाँ देशी पत्थर पर स्थानीय कारीगरों द्वारा निर्मित हैं और इन पर लेखादि नहीं मिलते। इन मूर्तियों में एक आश्चर्यजनक साम्य यह भी है कि जैनेतर समाज इनकी पूजा और मनौती करता है तथा अनेक चमत्कार पूर्ण कहानियाँ इनके साथ जुड़ गई हैं। सच तो यह है कि ये शांतिनाथ प्रतिमायें ही संबद्ध तीर्थ क्षेत्रों को अतिशय क्षेत्र की संज्ञा प्रदान करती हैं। बुन्देलखण्ड वासी पाड़ाशाह तेरहवीं शती ईस्वी के एक धनाड्य व्यापारी थे।

मिट्टी से बनी हुई प्रतिष्ठेय मूर्तियों के इतिहास में

मामा भनेज मंदिर की महावीर प्रतिमा अपना अप्रतिम स्थान रखती हैं। अपने शिल्प में यह हमें कुण्डलपुर के बड़े बाबा का स्मरण कराती है। कहा नहीं जा सकता कि इनमें कौन किससे प्रभावित है। शताब्दियों से समय-समय पर विधि-विधान संगत लेप्य से सतत् आवेष्टित होते रहने के कारण यह मूर्ति अपनी आभायुक्त सौम्य मुख मुद्रा सुरक्षित नहीं रख पाई है, जबकि बड़े बाबा के सम्मुख मानो काल भी स्थिर रह गया है। स्पष्टतः हम इस निरंतर परिवर्तमान अनुकृति का काल निर्धारण आसानी से नहीं कर सकते। फिर भी हमें ध्यान रखना होगा कि परवर्ती जैन प्रतिमा विज्ञान में मिट्टी, काष्ठ और लेप से बनी प्रतिमाओं को प्रतिष्ठेय नहीं ठहराया गया है। अतः भट्ट अकलंक और वर्धमान सूरि जैसे विद्वान् लेखकों के मृण्मूर्ति पूजा संबंधी उल्लेखों के आधार पर हम अनुमान कर सकते हैं कि यह ध्रुववेद नवताल लेप्पमयी प्रतिमा छठी-सातवीं शताब्दी की संघटना रही होगी। यह परिकर विहीन मूर्ति केवल श्रीवत्स, जटा और प्रभामंडल युक्त है, जो कि जैन प्रतिमाओं के आदिम लांछन हैं। इस विशाल मूर्ति के सामने नीचे की ओर-सिंहासन के मध्य तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की 6 फुट ऊँची पद्मासन रक्तम्भ प्रस्तर प्रतिमा प्रतिष्ठित है जो कदाचित् पार्श्ववर्ती मृण्मूर्ति को भक्त जनों के श्रद्धा-जल से सुरक्षित बनाये रखने के उद्देश्य से सन् 1775 ईस्वी में प्रतिष्ठित कराई गई है। चन्द्रप्रभ तथा इस मंदिर की अन्य तीर्थंकर मूर्तियाँ जटा तथा केश किरीट युक्त हैं।

जैन देवमंडल की विकास यात्रा के महत्त्वपूर्ण उदाहरण बीना-बारहा में उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम हम गंधकुटी स्थित उस शिल्पांकन का उल्लेख करना चाहेंगे जो ईसा की आठवीं-नवीं शताब्दी के अम्बिका कुबेर युग्म को प्रदर्शित करता है। जैन देवमंडल के अधिकारी विद्वान् श्री उमाकान्त परमानंद शाह के मतानुसार सन् 550 ईस्वी के लगभग प्रथम बार यक्ष-यक्षी के रूप में अम्बिका-कुबेर का अंकन होता रहा है। संभवतः ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में शासन देवताओं की अंतिम सूची निर्धारित होते समय अम्बिका-कुबेर का जोड़ा शिल्प शास्त्र से तिरोहित हो गया। अतः स्पष्ट है कि उक्त प्रतिमा ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी के पूर्व निर्मित हुई होगी। इसमें करण्ड मुकुट युक्त द्विभुज कुबेर के सुरा भाण्ड का प्रतीक है। कुबेर के बायी ओर अर्ध पर्यकासन में द्विभुज अम्बिका उत्कीर्ण है, वे अपने बायें हाथ से एक पुत्र को संभाले हुये हैं। मूर्ति के पादपीठ में संभवतः अष्टनिधियों

के प्रतीक पट अंकित हैं और मध्य पृष्ठभूमि में कल्पवृक्ष उत्कीर्ण है। अम्बिका कुबेर के लक्षण-संस्कारों से युक्त एक अन्य मूर्ति निकट ही अवस्थित है किन्तु उसमें सुरा-भाण्ड और नारी गोद में बालक अंकित नहीं है, संभव है यह प्रतिमा कुबेर से मिलते जुलते सर्वांगह यक्ष और ऋद्धि देवी की हो। इसके पादपीठ में चषक, थैली या घट के समान अष्ट निधियों का चित्रण है।

गंधकुटी के मध्य प्रदक्षिणा-पथ में कुबेर अंबिका मूर्तियों के निकट दो ऐसे चित्र फलक उपलब्ध हैं, जिन्हें पाकर यह तीर्थ कृतकृत्य है। इसमें से एक फलक पर बीसवें तीर्थकर मुनिसुव्रतनाथ के गर्भकल्याणक के दृश्य अंकित हैं। तीर्थकर की माता पद्मादेवी शैयाशायी है। दिक्कुमारिकायें उनकी चरण सेवा और परिचर्या में लगी हैं। फलक के शीर्ष भाग पर पद्मासीन तीर्थकर मूर्ति विराजमान है और पादपीठ पर कच्छप लांछन अंकित है। इसी प्रकार, दूसरे फलक में तीर्थकर मुनिसुव्रतनाथ के पिता महाराजा सुमित्र शैयासीन है। उनके सिर पर विष्णु और बलराम के समान फणावली है। देव देवियां नृत्य गान कर भगवान् के जन्म का आनंद मना रहे हैं। शीर्ष भाग पर पूर्व फलक की भांति पद्मासन में तीर्थकर मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस चित्रफलक की भ्रमवश श्री बलभद्र जैन ने पार्श्वनाथ तीर्थकर की माता वामादेवी से संबंध मान लिया है। यह पुरुष अंकित है और फणावली राजा सुमित्र के हरिवंशीय होने का प्रमाण प्रस्तुत करती है। इस प्रकार ये दोनों फलक भगवान् के माता-पिता से संबंध हैं। जैन मूर्तिकला में कल्याणक अंकन के ये अभूतपूर्व उदाहरण हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि बीना बारहा का स्वतंत्र चेता कलाकर शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन करते हुये भी अपनी प्रतिभा और क्षमता के अनुरूप, नवीन कलाकृतियों के अंकन में कहीं पीछे नहीं रहा है।

बीना-बारहा के परवर्ती देव मंडल में शासन देवताओं के साथ नवग्रह, दिक्पाल, दिक्कुमारिकायें, मातृकायें और विद्यादेवियाँ उत्कीर्ण हैं। नवग्रह शिलापट्ट मंदिरों के गर्भगृह द्वार में स्थापित रहे होंगे, किन्तु वे अब विपर्यस्त अवस्था में हैं। एक पंक्ति बद्ध नवग्रह शिलापट्ट अंकन के मध्य शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुये सूर्य विराजमान है, सूर्य की स्वतंत्र मूर्तियां भी यहाँ मिलती हैं। इसी प्रकार दस दिक्पालों की स्वतंत्र मूर्तियां भी प्रभूत मात्रा में उत्कीर्ण हैं, द्वार के एक शीर्ष भाग पर चार लोकपाल सपत्नीक अंकित हैं। मामा-भनेज मंदिर के द्वार पर विद्यादेवी सरस्वती का सुन्दर

अंकन हुआ है। स्तभों के अलंकरण स्वरूप अष्ट मातृकाओं और अप्सराओं की मूर्तियां भी यहाँ अंकित हैं। विद्यादेवी और शासनदेवी के रूप में अंबिका और चक्रेश्वरी के साथ गोमेध, कुबेर, अग्नि, क्षेत्रपाल आदि देवताओं की स्वतंत्र प्रतिमायें भी यहाँ अधिष्ठित हैं। अधिकांश मूर्तियां सत्रहवीं-अठारहवीं सदी में मंदिरों के पुर्ननिर्माण और जीर्णोद्धार के समय, दीवारों और द्वार के सिर दलों में अव्यवस्थित तरीके से लगा दी गई है। यहाँ तक कि कूप भित्तियों पर भी अनेक मूर्ति पट्टिकायें विजड़ित हैं।

बीना क्षेत्र के अहाते में अवस्थित सतीचौरा स्वभावतः दर्शकों में जिज्ञासा उत्पन्न कर देता है। पुरातात्विक दृष्टि से भले ही इसका कोई महत्त्व न हो, किन्तु यह निष्कर्ष असंगत न होगा कि किसी समय स्थानीय जैन समाज में सती प्रथा प्रचलित रही होगी, ग्रामवासियों से पता चला कि यहाँ लगभग 150 वर्ष पूर्व स्थानीय जैन मोदी परिवार की एक महिला सती हुई थी। उस परिवार के वंशधर आज भी गांव में विद्यमान हैं।

तीर्थ क्षेत्र के बाहर बीना गांव में बिखरी हुई पुरा संपदा में अनेक तीर्थकर मूर्तियों के साथ गणेश, नाग, बारह, सूर्य, विष्णु और वामनावतार से संबंधित प्राचीन कलात्मक मूर्तियां उपलब्ध हैं। ये मूर्तियां अटा, कोट, शंकर मंदिर, हरदौल चबूतरा, पोरिया आदि स्थानों पर संकलित हैं। पोरिया चबूतरे के संकलन में नाग-युगल वामनावतार और तीर्थकरों की मूर्तियां आठवीं से ग्यारहवीं सदी के उत्कृष्ट कलात्मक नमूने हैं। ककोट नाग युगल का अंकन कदाचित् जैन भास्कर्य है देवी पद्मावती ककोट नाग पर आसीन होती है, फणावली युक्त नाग द्वय के बीच वृश्चिक का अंकन ककोटक सर्प वर्ग का सूचक है, वामनावतार की अंलकृत समभंग प्रतिमा की प्रभावली अनेक पार्श्वचरों के चित्रण से युक्त है, यह दुर्लभ मूर्ति हमें खजुराहो के वामन मंदिर की मुख्य मूर्ति का स्मरण दिलाती है। पार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ तीर्थकर की आकर्षक खड्गासन मूर्तियां खण्डित हैं, खण्डित तीर्थकर मूर्तियों का एक छोटा सा संग्रहालय बीना जैन तीर्थ के अहाते में गंधकुटी के नीचे स्थापित है, जिसमें मड़खेरा, ईसुरपुर रानीताल आदि निकटवर्ती गांवों से तथा सुखचैन नदी से प्राप्त तेरहवीं से सत्रहवीं सदी के नमूने उपलब्ध हैं।

बिन्ध्य उपत्यका पर अवस्थित जिनालयों की वन्दना करते हुये आचार्य मदनकीर्ति (1228 ईस्वी) ने इन्द्र पूजित कहा है-

प्रत्यक्षया इव भान्ति निर्मलद्दशो देवेश्वअभ्यर्चिता ।
विन्ध्ये भूरूहि भासुरोअतिमहिते दिग्वाससां शासनम् ॥

श्रद्धालु भक्तों की दृष्टि में वह आज भी साकार और जीवंत है। इस पवित्र भूमि में अशेष प्रकृति जैनानुशासन के प्रताप से महामहिमामंडित हो उठी है। हरिषेण(सन् 932 ईस्वी) और पद्मनंदि द्वारा श्रद्धाभक्ति पूर्वक स्मरण किये गये इस विन्ध्य पारियात्र तीर्थ में अवगाहन कर कौन कृतकृत्य न

होगा? पंचकल्याणक प्रतिष्ठा और गजरथ यात्रा महोत्सव के पावन प्रसंग पर बीना-बारहा का चैत्य वन्दन लोक लाहु परलोक निवाहु मंगल विधायक बनें यही कामना है।

प्रस्तोता- 'तीर्थभक्त' शिखरचन्द्र सोधिया
पूर्व अध्यक्ष
बीना बारहा तीर्थ क्षेत्र कमेटी
महाराजपुर (देवरी)

दाग लगा दामन में

ज्ञानमाला जैन

कीच कपट की मन में, दाग लगा दामन में ॥

1

तृष्णा जल की भरी गगरिया,
लटपट, झटपट चली गुजरिया ॥
लोभ जेवरी काँधे लपटी,
रपट पड़ी रपटन में ॥

2

ऐसी रेह कहाँ से पाये?
मलमल चुनरी दाग छुटाये ।
सिर से गिर के टूटी मटकी,
हंसी भई सखियन में ॥

3

पाप कीच से सनी गुजरिया,
विषय भोग में कटी उमरिया ।
रागद्वेष किरिया में अटकी,
पछतावा बस मन में ॥

4

सद्गुरु की अब शरण गहेगी,
गंदली चूनर नहीं छिपेगी ।
गुरुवर तो जाने घट-घट की,
लाज थकी अँखियन में ॥

5

गुरु उपदेश लिया गुजरिया,
समरस बरसै आत्म नगरिया ।
अब सुधि आई है निज घट की,
धोया मल सावन में ॥
दाग लगा दामन में ॥

ए-332, ऐशबाग, भोपाल-10

जब जब पाती मिली मौत की

मनोज जैन 'मधुर'

जब जब पाती मिली मौत की, रोया बहुत किया ।
जीवन को जैसा जीना था, वैसा नहीं जिया ।
दया धर्म के लगा मुखोटे, धोते रहे नमक से छाले ।
अभिनय करते रहे राम का, अन्तर में रावण को पाले ।
साधु बनकर 'लोभ' 'शांति' की, हरता रहा सिया ॥1 ॥
नश्वरता का पाठ पढ़ाने, नित-नित आयें सांझ सकारे ।
आपाधापी की मदिरा पी, वौरा जाते भाग्य हमारे ।
भेद ज्ञान की दिव्य दृष्टि से, अंतर नहीं किया ॥2 ॥
धर्म अंजुरी से भर अमृत, जब जब हमें पिलाने आया ।
पाप वैरियों को वह मन में, फूटी आँख तनिक न भाया ।
पीते रहे गरल जीवन भर, अमृत नहीं पिया ॥ 3 ॥
हंसी अमावस अन्तर मन की, जब जब बाहर मनी दिवाली ।
भरे उजाले बाहर जग में, मन के छोड़े कोने खाली ।
जड़ के दीप जलाए जलाया, मन का नहीं दिया ॥ 4 ॥

सी. एस./ 13, इंदिरा कालोनी
बाग उमराव दुल्हा,
भोपाल-10

विनयाञ्जली

महेन्द्र कुमार जैन

अन्तर्मन का दीप जले तो सारा जग है अपना,
अन्तर्मनका दीप जले तो सारा जग है सपना ।
अन्तर्मनका दीप जलाने हम सब दीप जलायें,
अन्तर्मनका दीप जले बिन नहीं मुक्ति पथ पायें ॥

अल्पसंख्यक : एक संवैधानिक कवच या लाभ का जरिया ?

कैलाश मड़बैया

गुजरात की गत यात्रा में, मैंने वहाँ के एक समाचार पत्र में यह खबर पढ़ी थी—मध्यप्रदेश में छिन सकता है जैनियों का अल्पसंख्यक दर्जा : आश्चर्य हुआ कि म.प्र. में ऐसा कोई विवाद अभी चर्चा में नहीं है और गुजरात में पेपरबाजी शुरू? क्या गुजरात ने ही अल्पसंख्यकों के विवादों की ठेकेदारी ले ली है?यह वही गुजरात है जहाँ अहिंसक और अल्पसंख्यक जैन, अपना आदिकालीन तीर्थ गिरनार बचाने के लिये पहली बार सड़क पर आ गये हैं और राज्य सरकार चंद अराजक तत्त्वों के विरुद्ध कार्यवाही तक नहीं कर रही है।

बाद में ज्ञात हुआ कि 8 अगस्त 05 को ही माननीय सुप्रीमकोर्ट ने श्री बाल पाटिल की एक रिट पिटीशन पर निर्णय दिया है कि... अल्पसंख्यक समुदाय का निर्धारण राज्यों को करना चाहिये। शायद इसलिये कि शिक्षा राज्य सरकार की परीधि का विषय है। यह भी कि लोकतांत्रिक समाज का आदर्श होना चाहिये कि अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक और तथाकथित पिछड़े वर्गों का फर्क खत्म कर देना...! आदि और राष्ट्रीय स्तर पर जैनों को अल्पसंख्यक दर्जा देने के राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के अनुरोध को नामंजूर कर दिया। यह जैनों के लिये आघात है।

वास्तव में माननीय न्यायालय का मत अपनी जगह नहीं है। पर असहमति केवल इतनी हो सकती है कि संविधान के आर्टिकल 25 से 30 में जब तक अल्पसंख्यकों के प्रावधान निहित हैं, तब तक कोई एक समाज वास्तविक पात्र होते हुये भी इस संवैधानिक सुरक्षा से वंचित क्यों रहे?

जैसे—गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की सदस्य सूची इसलिये प्रकाशित नहीं की जाये कि सरकार ने गरीबी क्यों मिटाई? चूँकि इससे समाज में गरीबी और अमीरी का एक वर्ग तैयार होता है, जो राष्ट्रीय विषमता पैदा करता है आदि क्या इससे गरीबी रेखा के नीचे वालों का हक छिन जाना चाहिये? पुनः इसकी तह में जाने पर ज्ञात होता है कि यह विवाद तो वास्तव में 1992 में संसद द्वारा पारित The National Commission for Minorities Act 1992 के समय से ही प्रारम्भ हो गया था, जब इसकी धारा 2सी में

अल्पसंख्यकों को यह कहकर परिभाषित किया कि अल्पसंख्यक वह समुदाय है, जिसे केन्द्र सरकार अपनी विज्ञप्ति में जो इस हेतु प्रकाशित हो, उल्लेख कर घोषित करें! मतलब अल्पसंख्यक घोषित करने की राजनीति शुरू! इतना ही नहीं! केन्द्र सरकार ने धार्मिक आधार पर बौद्ध, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी समाज को तो अल्पसंख्यक घोषित कर दिया और सम्पूर्ण पात्रतायें होते हुये भी शान्त रहने वाले जैन समाज को अघोषित छोड़ दिया। बस तभी से न्यायोचित होते हुये भी यह विवाद जारी है। अल्पसंख्यक आयोग और कई उच्च न्यायालयों के निर्देशों के बावजूद भी केन्द्र सरकार उक्त एक्ट की धारा 2सी के तहत घोषणा करता है इसलिये नहीं कर रही है कि न तो जैन समाज अन्यो की तरह हिंसा पर उतारू हो रहा है और न ही राजनैतिक रूप से वह समर्थ है जबकि यह तथ्य किसी से छिपे नहीं हैं कि जैनों की संख्या सरकारी गणना के अनुसार भी सचमुच अल्प है, न केवल केन्द्र में वरन् प्रान्तों में भी कल्याण मंत्रालय भारत सरकार की 1998 में घोषित जनगणना के अनुसार जैनों की संख्या मात्र 33,32,469 है जबकि ईसाई 1,88,95,917, सिक्ख 1,62,43,252, बौद्ध 63,23,412, मुस्लिम 96,28,4321 और पारसी मात्र 76,282 अर्थात् जैन संख्या में दूसरे नम्बर पर अल्प हैं, पारसियों से कुछ ज्यादा मुस्लिमों, सिक्खों, ईसाईयों से बहुत कम, फिर भी अल्पसंख्यक घोषित नहीं, संविधान में भी अल्पसंख्यकों को भाषायी और धार्मिक कह कर अव्याख्यायित छोड़ दिया गया।

यह निर्विवाद है कि जैनधर्म एक स्वतंत्र धर्म है वह हिन्दू धर्म का अंग किसी दृष्टि से नहीं। इनमें आधारभूत अन्तर यह हैं कि हिन्दूधर्म में सब कुछ कर्ता धर्ता ईश्वर होता है और जैनधर्म में इस तरह का कर्ता ईश्वर जैसी कोई सत्ता होती ही है, यह आत्मवादी धर्म है, एक प्रवृत्तिमार्गी है तो दूसरा निवृत्तिमार्गी। हिन्दूधर्म का आधार वेद है जबकि जैनधर्म में वेदों का अस्तित्व ही नहीं, यह वेदों को अलौकिक भी नहीं मानता। इसके अपने इतिहास, भूगोल, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, साहित्य और विधि विधान हैं।

जैनधर्म में तीर्थकरों को मान्यता है, लेकिन वे सृष्टि के कर्ता नहीं, इत्यादि यह पृथक्ता / स्वतंत्रता अनेक महापुरुषों ने खोजों से स्वीकार भी की है यथा सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् पं.जवाहरलाल नेहरु आदि ने अपनी-अपनी कृतियों में सप्रमाण यह उल्लेख किये भी हैं, खारवेल एवं सिंधुघाटी सभ्यतादि से जैनधर्म की प्राचीनता पहले ही सिद्ध हो चुकी है। यह उतना ही निर्विवाद है जितना यह कि सदियों से हिन्दू संस्कृति में जैन, दूध-पानी की तरह एकाकार में रचे पचे हैं और राजनीतिज्ञ, हिन्दू-मुस्लिम के बीच की तरह आड़े नहीं आये तो कभी दोनों अहिंसक समाज पृथक् दिखेंगे भी नहीं।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, उत्तरांचल, कर्नाटक आदि की राज्य सरकारों ने जैनों को अल्पसंख्यक घोषित कर भी दिया है और वहाँ कोई विवाद नहीं है। मध्यप्रदेश में केवल इसलिये कि यह घोषणा कांग्रेसी सरकार ने की थी, इसलिये भाजपा में कुछ मलाल है जबकि उसके तुरन्त बाद हुये चुनाव में भाजपा सरकार के बनने में जैन समाज का योगदान कम नहीं रहा, इसलिये चार-चार मंत्री जैन हैं पर सुगबुगाहट यह कह कर कि इससे मुख्य धारा कट जायेंगे या यह कह कर कि जैनों को हिंसकों के साथ बैठना पड़ेगा आदि निराधार तर्क दिये जाकर कथित कांग्रेसी देन, छीनने की बदनियतीपूर्ण कानाफूसी है, जबकि ऐसा कुछ भी आधार नहीं है, न तो जैनियों का हिन्दुओं से सौहार्द कम हुआ है, न मुख्य धारा से कटे हैं, न सभी जैन कांग्रेसी हो गये, न कोई भाजपा से कट गये। नहीं, हिंसकों के साथ जुड़ाव हुआ है कोई आरक्षण मिल गया हो-ऐसा भी नहीं हुआ और न ही ऐसी कोई मांग है, जैनियों को कोई आर्थिक लाभ मिला हो ऐसा भी नहीं, न ही ऐसी कोई मांग है फिर लाभ क्या है यह भी देख लें-संविधान के अनुच्छेद 25 से 30 को इसलिये समझना यहाँ आवश्यक है-अनुच्छेद 25 से 28 में धार्मिक स्वतन्त्रता के मौलिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है केवल 29 एवं 30 में अल्पसंख्यक शब्द का प्रयोग है, जिसके अनुसार भारत के नागरिकों का कोई समुदाय यदि अपनी भाषा, लिपि अथवा संस्कृति रखता है तो उसकी अक्षुण्यता बनाये रखने का उसे पूर्ण अधिकार है। अनुच्छेद 30 में अल्पसंख्यक वर्ग को अपनी भाषा अथवा धर्म के आधार पर शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, उनका संचालन, शिक्षा के मापदण्डों के मानते हुये, करने का अधिकार है इस तरह मात्र इससे संवैधानिक सुरक्षा, केवल विधिक

कवच के रूप में उपलब्ध हुआ है। जैनसमाज केवल अपनी शिक्षण संस्थायें स्वतन्त्रता से चला सकेंगे। दूसरे शब्दों में अल्पसंख्यक का अधिकार केवल भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 व 30 में जो धार्मिक शिक्षण संस्थाओं के संचालन हेतु है, वहीं तक सीमित हैं, इससे राजनैतिक अथवा किसी प्रकार के आर्थिक लाभ या संरक्षण से किंचित् भी नहीं है, इसलिये जब कोई जैनियों के आर्थिक स्तर को इस हेतु मापता है अथवा सामाजिक स्तर की बात करता है तो वह स्वयं को और दूसरों को भ्रमित करता है, वस्तुतः यह केवल धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए संवैधानिक कवच मात्र है। किसी प्रकार का हरिजन/आदिवासी जैसा आर्थिक पैकेज या मुस्लिमों जैसा आरक्षण का लाभ बिल्कुल नहीं है। न जैन समाज ने कभी इस तरह के लाभ की मांग की है लेकिन लोकतन्त्र में अपना निहित संवैधानिक सुरक्षा कवच भी न मिले, उसके गिरनार जैसे आदिकालीन तीर्थ को भी उससे छिना जाये या जैन मुनियों को सुरक्षा भी न मिले या आने वाली पीढ़ियों को जैन संस्कार भी न दे सकें तो फिर अस्तित्व बचाने के लिये कुछ तो करना ही होगा, अहिंसक माने निष्क्रिय तो नहीं होता न?

पूर्व के न्यायिक दृष्टान्त

1. ए. एस. आइ. ट्रस्ट बनाम डायरेक्टर एजुकेशन दिल्ली ए. आइ. आर. 1976 दिल्ली 207 श्री श्वेताम्बर तेरापंथी विद्यालय बनाम स्टेट ए. आइ. आर 1982 कलकत्ता 101 में जैनसमाज को अल्पसंख्यक घोषित करते हुये अनु. 30 के तहत जैनधर्म को स्वतन्त्र धर्म माना गया है।
2. मंडल कमीशन ने जैनों को हिन्दुओं से भिन्न समूह में माना जिसे माननीय न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांक 16.11.1992 में सही ठहराया था।
3. पंजाब राज्य बनाम डी. पी. मेशराम में सर्वोच्च न्यायालय ने ही स्पष्ट किया था, अनुच्छेद 25, 2वीं में जैनों को स्वतंत्र धर्मावलम्बी माना है।
4. श्री बाल पाटिल की रिट याचिका 5009/97 भारत सरकार व अन्य में बम्बई हाइकोर्ट की खण्डपीठ ने 20.10.1993 को यह निर्देश दिये थे कि वह अल्पसंख्यक आयोग की सिफारिश पर जैन अल्पसंख्यक का स्टेटस प्राप्त करने के अधिकारी हैं, शीघ्र निर्णय लें।
5. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग ने दिनांक 3.10.94

को जैन समुदाय को जैनधर्म को स्वतन्त्र मानते हुये सिफारिश की कि जैनों को अल्पसंख्यक घोषित किया जाये। 17.12.96 को पुनर्गठन होने के बाद आयोग के अध्यक्ष ने पुनः अपना मत दोहराया।

6. पं जवाहर लाल नेहरू ने अनुच्छेद 25 की लिखित में व्याख्या कर स्वीकार किया था कि जैन धार्मिक ग्रुप, धर्म की दृष्टि से हिन्दुओं से भिन्न हैं।

7. श्री हाकिम सिंह बनाम स्थानकवासी जैन श्रावक संघ में बम्बई हाईकोर्ट की एकलपीठ ने 29. 9. 2000 को यह निर्णय दिया था कि अल्पसंख्यक धार्मिक समुदाय को अपनी शिक्षण संस्थाएँ चलाने का पूर्ण अधिकार है।

माना कि सर्वोच्च न्यायालय का 8. 8. 2005 का निर्णय उपरोक्त भावनाओं के विपरीत, चौकाने वाला है परन्तु असहमत होने पर पुनर्निरीक्षण याचिका प्रस्तुत करने का भी प्रावधान है जो शीघ्र की जानी चाहिये। हालांकि न्यायालय से हटकर, केन्द्र सरकार में यदि जरा भी न्यायप्रियता है तो उसे स्वयं ही जैनियों की अल्पसंख्या देखते हुये और अल्पसंख्यक आयोग के विवेकपूर्ण प्रस्ताव पर सकारात्मक निर्णय लेते हुये तत्काल अल्पसंख्यकों की सूची में ईसाईयों

पारसियों की भांति जैनियों का नाम भी जोड़ देना चाहिये। केन्द्र सरकार को न्यायालय के निर्देशों की आवश्यकता ही क्यों है? अनावश्यक विवाद की आवश्यकता ही नहीं है।

चूँकि भारत धर्म प्रधान देश है, यहाँ इसी से सौहार्द और प्रेम के साथ विविधता में एकता बनी हुई है। धर्म हमें जोड़ता है, तोड़ता नहीं, यदि अल्पसंख्यकों की पहचान कर उन्हें संवैधानिक सुरक्षा प्रदान नहीं की गई तो एक संस्कृति ही नेस्तनाबूद होने का खतरा है जो राष्ट्रीय एकता का मूल आधार है।

धर्म कभी ऋणात्मक नहीं होता..... राजनैतिक भले उसका उल्टा लाभ उठा लें, परन्तु यह भी विडम्बना ही है कि अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए आज हमें राजनीति का ही सहारा लेना पड़ता है। हाँ वास्तविकता से मुँह मोड़ना किसी भी समाज के लिये अदूरदर्शिता होगी, थोड़े आर्थिक लाभों के लिये नहीं वरन् संवैधानिक सुरक्षा के लिये और समय पर नहीं चेते तो भविष्य में अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न भी लग सकता है? यह विचारणीय है।

अध्यक्ष राष्ट्रीय अनेकान्त अकादमी
75, चित्रगुप्त नगर, कोटरा, भोपाल

भगवान् सुपाश्वनाथ जी

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र के काशी देश में बनारस नाम नगरी थी। उसमें सुप्रतिष्ठ महाराज राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम पृथ्वीषेणा था। ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन उन महारानी ने मध्यम ग्रैवेयक के सुभद्रविमानवासी अहमिन्द्र को तीर्थकर सुत के रूप में जन्म दिया। भगवान् पद्मप्रभ के नौ हजार करोड़ सागर बीत जाने पर भगवान् सुपाश्वनाथ का जन्म हुआ। उनकी आयु भी इसी अन्तराल में सम्मिलित थी। उनकी आयु बीस लाख पूर्व और शरीर की ऊँचाई दो सौ धनुष थी। जब उनकी आयु बीस पूर्वांग कम एक लाख पूर्व की रह गई तब किसी समय ऋतु का परिवर्तन देखकर वे विरक्त हो गये और सहेतुक वन में जाकर ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन सायंकाल के समय बेला का नियम लेकर एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण कर ली। पारणा के दिन वे भगवान् सोमखेट नामक नगर में गये। वहाँ सुवर्ण के समान कान्ति वाले महेन्द्र राजा ने आहार दान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। नौ वर्ष छद्मस्थ अवस्था में रहकर मुनि सुपाश्वनाथ उसी सहेतुक वन में दो दिन के उपवास का नियम लेकर शरीष वृक्ष के नीचे ध्यानारूढ़ हुए। तदनन्तर फाल्गुन कृष्ण षष्ठी के दिन सायंकाल के समय घातिया कर्म के नष्ट हो जाने से केवलज्ञान प्राप्त हुआ। भगवान् सुपाश्वनाथ के समवशरण की रचना हुई, जिसमें तीन लाख मुनि, तीन लाख तीस हजार आर्थिकार्ये, तीन लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यच थे। इस प्रकार अनेक देशों में विहार कर धर्मोपदेश देते हुए जब उनकी आयु एक माह शेष रह गई तब विहार बन्द कर वे सम्मेदशिखर पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमा योग धारण किया। तदनन्तर फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन प्रातःकाल अघातिया कर्मों का नाश कर मोक्ष प्राप्त किया।

मुनि श्री समतासागर-कृत 'शलाकापुरुष' से साभार

पृथ्वी की दिशाएँ घूर्णन के साथ स्थिर रहती हैं

राज कुमार कोट्यारी

जिनभाषित के अक्टूबर अंक में डॉ. धन्नालाल जी जैन ने लिखा है कि दिशाएँ पृथ्वी के घूर्णन के साथ परिवर्तित हो जाती हैं, यह तथ्य भ्रामक है तथा लेखक ने महान् भौतिक वैज्ञानिकों एवं वास्तुशास्त्रियों के वर्षों के परिश्रम को चुनौती दे डाली।

यह तो सभी जानते हैं कि पृथ्वी अपनी धूरी पर घूम रही है और उसके चारों ओर एक चुम्बकीय क्षेत्र विकसित हो रहा है। भौगोलिक उत्तर पर चुम्बकीय दक्षिण है तथा भौगोलिक दक्षिण पर चुम्बकीय उत्तर है। कोमपास में उपस्थित सुई भी एक चुम्बक होती है, जिसमें भी दो चुम्बकीय ध्रुव होते हैं (उत्तर व दक्षिण)। भौतिकी के नियम के अनुसार असमान चुम्बकीय ध्रुव आकर्षित होते हैं। अर्थात् कोमपास का उत्तर चुम्बकीय दक्षिण को आकर्षित करता है। अतः सुई का उत्तर भौगोलिक उत्तर दिखाता है।

पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र पृथ्वी के धरातल से ही जुड़े हैं, जब पृथ्वी अपनी अक्ष पर घूमती है, तब उससे जुड़े चुम्बकीय क्षेत्र भी घूमते हैं तथा उत्तर व दक्षिण स्थिर रहते हैं।

जहाँ तक बात पूर्व व पश्चिम की है, अवश्य वे काल्पनिक हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह परिवर्तित होती रहती है। पूर्व दिशा उस दिशा को माना गया है जो उत्तर के दाहिने ओर है या कहिये वह क्षितिज जहाँ से सूर्योदय दिखाई देता है। जब उत्तर स्थिर है तो दाहिने पूर्व भी स्थिर है और सूर्योदय के सिद्धान्त से भी वह स्थिर है, क्योंकि वह क्षितिज भी हमारे भवन के साथ पृथ्वी के घूर्णन की गति से ही घूमता है। पश्चिम का भी गणित यही है। अतः सैद्धान्तिक रूप से देखें या स्थिर उत्तर के सन्दर्भ में, पूर्व व पश्चिम नहीं बदलते।

डॉ. धन्नालाल जी ने लेख यह मानकर लिखा है कि चारों दिशाएँ ब्रह्माण्ड में स्थिर हैं। उनका अस्तित्व ब्रह्माण्ड में है परन्तु यह विचार गलत है। दिशाओं का अस्तित्व पृथ्वी पर ही है, क्योंकि दिशाएँ तो पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की खोज में उत्पन्न हुई हैं। ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध ज्योतिष विज्ञान से है, वास्तुकला तो पृथ्वी पर ही है। वास्तुकला, भवननिर्माण एवं जीवन का अंग है। भवननिर्माण, वास्तु और ज्योतिष दोनों को ध्यान में रखकर होता है, दोनों तथ्य एक दूसरे पर आश्रित हैं। ज्योतिष का क्षेत्र ब्रह्माण्ड से जुड़ा है और निर्माण का पृथ्वी से और दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, इसीलिये तो वास्तु के निर्माण के साथ ज्योतिष को भी ध्यान में रखा जाता है।

कोट्यारी भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर

पृथ्वी के घूमने से दिशाएँ नहीं बदलतीं

डॉ. अनिल कुमार जैन

अक्टूबर 2005 के जिनभाषित में डा. धन्नालाल जैन (इन्दौर) का एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसका शीर्षक है - 'पृथ्वी का घूमना वास्तुशास्त्र को निरर्थक सिद्ध करता है।' लेखक की भावना अच्छी है, लेकिन जिस तर्क को लेकर अपनी बात कही है, वह गलत है। पृथ्वी के घूमने से दिशाएँ नहीं बदला करती हैं। इन दिशाओं का निर्धारण तो पृथ्वी पर ही स्थित उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव के सापेक्ष है। जब पृथ्वी घूमती है तो उसका हर हिस्सा घूमता है, ऐसा नहीं है कि उत्तरी ध्रुव या दक्षिणी ध्रुव स्थिर रहे आते हों। वे भी घूमते हैं और उनके सापेक्ष पृथ्वी का हर भाग स्थिर है। इस प्रकार यह मान्यता गलत है कि पृथ्वी के घूमने के साथ दिशाएँ बदल जाती हैं।

साबरमती, अहमदाबाद-5

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतन लाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता : श्री नरेन्द्र कुमार जैन, नांदेड़

जिज्ञासा : कौन से समुद्घात किस गुणस्थान तक होते हैं?

समाधान : समुद्घातों में गुणस्थान इस प्रकार जानने चाहिये।

1. कषाय समुद्घात-पहले से छठवें गुणस्थान तक।
2. वेदना समुद्घात-पहले से छठवें गुणस्थान तक।
3. वैक्रियक समुद्घात-पहले से छठवें गुणस्थान तक।
4. मारणान्तिक समुद्घात-तीसरे गुणस्थान को छोड़कर पहले से ग्यारहवें गुणस्थान तक।
5. तैजस समुद्घात-मात्र छठवें गुणस्थान में।
6. आहारक समुद्घात-मात्र छठवें गुणस्थान में।
7. केवली समुद्घात-मात्र तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में।

प्रश्नकर्ता : कु. आशा शाह, सूरत

जिज्ञासा : क्या वर्तमान के मुनिराजों को उत्कृष्ट अन्तरात्मा कहा जा सकता है ?

समाधान : अन्तरात्मा के तीन भेद कहे गये हैं। 1. उत्कृष्ट अन्तरात्मा 2. मध्यम अन्तरात्मा 3. जघन्य अन्तरात्मा। इनके लक्षण आचार्यों ने इस प्रकार कहे हैं-

1. कार्तिकेयानुप्रेक्षा में गाथा 195 से 197 तक अन्तरात्मा का स्वरूप इस प्रकार बताया है-“जो जीव पाँचों महाव्रतों से युक्त होते हैं, धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान में सदा स्थिर रहते हैं तथा वे समस्त प्रमादों को जीत लेते हैं, वे उत्कृष्ट अन्तरात्मा हैं ॥ 195 ॥ श्रावक के व्रतों को पालने वाले गृहस्थ और प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि मध्यम अन्तरात्मा होते हैं। ये जिनवचन में अनुरक्त रहते हैं, उपशम स्वभावी होते हैं और महापराक्रमी होते हैं ॥ 196 ॥ जो जीव अविरत सम्यग्दृष्टि हैं, वे जघन्य अन्तरात्मा हैं। वे जिन भगवान् के चरणों के भक्त होते हैं, अपनी निन्दा करते रहते हैं और गुणों को ग्रहण करने में बड़े अनुरागी होते हैं ॥ 197 ॥ भावार्थ-चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जघन्य अन्तरात्मा, पंचम एवं षष्ठम गुणस्थानवर्ती मध्यम अन्तरात्मा और सप्तम से द्वादश गुणस्थान पर्यन्त उत्कृष्ट अन्तरात्मा होते हैं।

2. नियमसार टीका 149 में इस प्रकार कहा है- अन्तरात्मा के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेद हैं। उनमें अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है, पाँचवें गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक मध्यम अन्तरात्मा है और क्षीणमोह 12 वें गुणस्थानवर्ती उत्कृष्ट अन्तरात्मा हैं।

3. बृहद् द्रव्य संग्रह गाथा 14 की टीका में इस प्रकार कहा है- अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उसके योग्य अशुभ लेश्या रूप ये परिणमित (जीव) जघन्य अन्तरात्मा है, क्षीण कषाय गुणस्थान में उत्कृष्ट अन्तरात्मा हैं तथा अविरत और क्षीण कषाय गुणस्थान के बीच के गुणस्थानों में पाँचवें से ग्यारहवें तक मध्यम अन्तरात्मा हैं।

4. वीरवर्धमान चरित्र सर्ग 16, श्लोक 95-96 में चतुर्थ गुणस्थान वाले जीव को जघन्य अन्तरात्मा, पाँचवें से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव को मध्यम अन्तरात्मा और 12 वें गुणस्थानवर्ती जीव को उत्कृष्ट अन्तरात्मा कहा है।

वर्तमान में मुनिराजों के पहले गुणस्थान से सातवाँ गुणस्थान तक होना संभव है, यदि उनका गुणस्थान पहले से तीसरा तक है तो बहिरात्मा हैं यदि चौथा गुणस्थान है तो जघन्य अन्तरात्मा हैं और शेष तीन गुणस्थानों में पाँचवें और छठवें गुणस्थान में तो सर्वसम्मत रूप से मध्यम अन्तरात्मा हैं, जबकि सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनिराज को कार्तिकेयानुप्रेक्षा में उत्कृष्ट अन्तरात्मा कहा गया है।

किस मुनि के कौन सा गुणस्थान है, यह हमारे ज्ञानगम्य नहीं है। इतना अवश्य है कि जिनका शिथिलाचार स्पष्ट दिखाई दे रहा है, उनको प्रथम गुणस्थानवर्ती बहिरात्मा ही मानना चाहिये।

प्रश्नकर्ता : श्रीकान्त जैन, झांसी

जिज्ञासा : भगवान् की वेदी के बाहर जो इन्द्र बनाये जाते हैं, उनके बाल भी दिखाये जाते हैं तो क्या देवों के वैक्रियक शरीर में बाल होते हैं?

समाधान-उपरोक्त जिज्ञासा के समाधान में निम्न प्रमाणों पर विचार करना चाहिये-

1. श्री मूलाचार में इस प्रकार कहा है-

केसणहमंसुलोमा चम्मवसारूहिरमुत्तपुरिसं वा ।
णेवट्टी णेव सिरा देवाण सररीसंठाणे ॥ 1054 ॥

अर्थ- देवों के शरीर में केश, नख, मूँछ, रोम, चर्म, वसा, रूधिर, मूत्र और विष्टा नहीं हैं तथा हड्डी और सिरातल भी नहीं होते हैं।

2. तिलोयपण्णत्ति के तृतीय अधिकार में इस प्रकार कहा है-

अट्टि-सिरा-रुहिर-वसा-मुत्त-पुरीसाणि केस-लोमाइं।

चम्म-णह-मंस-पहुदी ण होति देवाण संघडणे ॥ 212 ॥

अर्थ- देवों के शरीर रचना, हड्डी, नस, रूधिर, चर्बी, मूत्र, मल, केश, रोम, चमड़ा, नख और मांस आदि नहीं होते हैं।

3. श्री सिद्धान्तसार दीपक में इस प्रकार कहा है-

नेत्रस्पन्दो न जात्वेषां न स्वेदो न मलादि च।

नखकेशादिकं नैव न वार्धक्यं न रोगिता ॥ 307 ॥

अर्थ- स्वर्गों में देवों के नेत्रों का परिस्पंदन नहीं होता है। उनके न पसीना आता है, न मल-मूत्र आदि होता है, न नख केश आदि होते हैं, न वृद्धपन आता है और न किसी प्रकार के रोग होते हैं।

4. बोध पाहुड गाथा 32 की टीका में इस प्रकार कहा है-

देवा वि य नेरइया हलहरचक्की य तह तिथयरा।

सखे केसवरामा कामा निक्कुंचिया होति ॥ 32 ॥

अर्थ-देव, नारकी, हलधर-बलभद्र, चक्रवर्ती, अर्ध चक्रवर्ती, सभी नारायण और कामदेव ये डाढ़ी-मूँछ से रहित होते हैं।

4. श्री महापुराण भाग-1 पृष्ठ 259 पर इस प्रकार कहा है- सौधर्म स्वर्ग के देवों के शरीर में नख, चर्म और सिर में रोम नहीं होते हैं। रक्त, पित्त, मल, मूत्र, नसें, मांस और डाढ़ी केश नहीं होते हैं।

उपरोक्त सभी प्रमाणों के अनुसार देवों के सिर के केश, रोम तथा डाढ़ी, मूँछ नहीं होते हैं। परन्तु आदिपुराण पर्व 10, श्लोक नं. 178 में अच्युत स्वर्ग के इन्द्र का वर्णन करते हुए, इस प्रकार कहा है- काले-काले केश और श्वेत वर्ण की पगड़ी से सहित उसका मस्तष्क ऐसा जाण पड़ता था, मानो तापिच्छ पुष्प से सहित और आकाश गंगा के पूर से युक्त हिमालय का शिखर ही हो। अर्थात् अहमिन्द्र के सिर पर काले-काले केश थे।

इस प्रकार आचार्य जिनसेन महाराज देवों के सिर पर केश तो मानते हैं परन्तु डाढ़ी मूँछ के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह रहे हैं। हमें सभी प्रसंगों को ध्यान में रखकर धारणा

बनाना योग्य है।

प्रश्नकर्ता-ब्र. हेमचन्द्र जी 'हेम', भोपाल

जिज्ञासा-कृपया इन मान्यताओं के बारे में अपने विचार लिखें-

1. परमार्थतः अनन्तानुबंधी चारित्र की प्रकृति है, वह चारित्र ही का घात करती है, सम्यक्त्व का घात नहीं करती है।

2. दूसरे गुणस्थान में उपशम सम्यक्त्व का ही काल है, इसलिये उसे सासादन सम्यग्दृष्टि कहा/सासादन मिथ्यादृष्टि नहीं कहा।

समाधान-उपरोक्त जिज्ञासा 1. (अ) के समाधान में कृपया धवल पुस्तक 1 पृष्ठ 163 का अवलोकन करें। वहाँ इस प्रकार कहा है, 'प्रश्न-सासादन गुणस्थान वाला जीव मिथ्यात्व का उदय होने से मिथ्यादृष्टि नहीं है', समीचीन रुचि का अभाव होने से सम्यग्दृष्टि भी नहीं है। दोनों को विषय करने वाली सम्यग्मिथ्यात्व रूप रुचि का अभाव होने से सम्यग्दृष्टि भी नहीं है। इनके अतिरिक्त और कोई चौथी दृष्टि है नहीं क्योंकि समीचीन-असमीचीन और उभयरूप दृष्टि के आलम्बनभूत वस्तु के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु पायी नहीं जाती है। इसलिये सासादन गुणस्थान असत्स्वरूप है। उत्तर-ऐसा नहीं है, क्योंकि सासादन गुणस्थान में विपरीत अभिप्राय रहता है, इसलिये उसे असद्दृष्टि ही समझना चाहिये। प्रश्न-यदि ऐसा है तो इसे मिथ्यादृष्टि ही कहना चाहिये, सासादन संज्ञा देना उचित नहीं है? उत्तर-नहीं, क्योंकि, सम्यग्दर्शन और चारित्र का प्रतिबन्ध करने वाली अनंतानुबंधी कषाय के उदय से उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश दूसरे गुणस्थान में पाया जाता है, इसलिये द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीव मिथ्यादृष्टि है किन्तु मिथ्यात्व कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश वहाँ नहीं पाया जाता है, इसलिये उसे मिथ्यादृष्टि नहीं कहते हैं। केवल सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं। प्रश्न-ऊपर के कथनानुसार जब वह मिथ्यादृष्टि ही है तो फिर उसे मिथ्यादृष्टि संज्ञा क्यों नहीं दी गयी है? उत्तर-ऐसा नहीं है, क्योंकि सासादन गुणस्थान को स्वतंत्र कहने से अनंतानुबंधी प्रकृतियों की द्विस्वभाव का कथन सिद्ध हो जाता है। (आ) गोमटसार कर्मकाण्ड टीका 546/71/12 में इस प्रकार कहा है, 'मिथ्यात्वेन सहोदीयमानाः कषायाः सम्यक्त्वंधन्ति। अनन्तानुबंधिना च सम्यक्त्वसंयमौ।' अर्थ-मिथ्यात्व के साथ उदय होने वाली कषाय सम्यक्त्व को घातती है और

अनन्तानुबंधी के द्वारा सम्यक्त्व के द्वारा सम्यक्त्व और संयम घाता जाता है।

(इ) श्री धवला पु. 1 पृष्ठ 361 पर इस प्रकार कहा है, 'मिथ्यादृष्टि जीवों के भले ही दोनों (मति व श्रुत) अज्ञान हों, क्योंकि वहाँ पर वे दोनों ज्ञान अज्ञानरूप नहीं होना चाहिये?' उत्तर- नहीं क्योंकि, विपरीताभिनिवेश को मिथ्यात्व कहते हैं और वह विपरीताभिनिवेश मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी इन दोनों के निमित्त से उत्पन्न होता है।

(ई) पंचसंग्रह प्राकृत 1/115 में इस प्रकार कहा है, 'पढमो दंसणघाई विदिओ तह घाई देसविरइ त्ति तइओ संजमघाई चउत्थो जहरवाय घाईया'। प्रथम अनन्तानुबंधी कषाय सम्यग्दर्शन का घात करती है, द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण कषाय देशविरति का घातक है, तृतीय प्रत्याख्यानावरण कषाय सकल संयम की घातक है और चतुर्थ संज्वलन कषाय यथाख्यात चारित्र की घातक है।

(उ) अनन्तानुबंधी यद्यपि चारित्रमोहनीय ही है तथापि वह स्वक्षेत्र तथा परक्षेत्र में घात करने की शक्ति से युक्त है। श्री धवला पु. 6 पृष्ठ 42-43 में कहा है कि 'अणंताणुबंधिणो- - - - -सम्मत्तचारित्तणं विरोहिणी। दुविहसत्तिसंजुदत्तादो। - - - - -एदेसिं- - - - -सिद्धं दंसणमोहणीयत्तं चरित्तमोहणीयत्तं च'। अर्थ-गुरु उपदेश तथा युक्ति से जाना जाता है कि अनन्तानुबंधी कषायों की शक्ति से दो प्रकार की है। इसलिये सम्यक्त्व व चारित्र इन दोनों को घातने वाली दो प्रकार की शक्ति से संयुक्त अनन्तानुबंधी है। - - - - - इस प्रकार सिद्ध होता है कि अनन्तानुबंधी दर्शन मोहनीय भी है, चारित्र मोहनीय भी है। अर्थात् सम्यक्त्व तथा चारित्र को घातने की शक्ति से संयुक्त है। इस प्रकार अनन्तानुबंधी की दोनों शक्तियों को स्वीकार करना चाहिये।

(ऊ) श्री धवला पु. 1, पृष्ठ 165 पर इस प्रकार कहा है- 'अनन्तानुबंधी प्रकृतियों की द्विस्वाभावता का कथन सिद्ध हो जाता है तथा जिस अनन्तानुबंधी के उदय से दूसरे गुणस्थान में विपरीताभिनिवेश होता है, वह अनन्तानुबंधी दर्शन मोहनीय का भेद नह होकर चारित्र का आवरण करने वाला होने से चारित्र मोहनीय का भेद है'। प्रश्न-अनन्तानुबंधी सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों का प्रतिबन्धक होने से उसे उभयरूप संज्ञा देना न्याय संगत है? उत्तर-यह आरोप ठीक नहीं है, क्योंकि यह तो हमें इष्ट ही है, अर्थात् अनन्तानुबंधी को सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों का प्रतिबंधक माना ही है।

(ए) श्री धवला पु. 6, पृष्ठ 42 पर इस प्रकार कहा है- 'प्रश्न-अनन्तानुबंधी कषायों की शक्ति दो प्रकार की है, इस विषय में क्या युक्ति है?' उत्तर-ये चतुष्क दर्शन मोहनीय स्वरूप नहीं माने जा सकते हैं, क्योंकि सम्यक्त्व प्रकृति, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के द्वारा ही आवरण किये जाने वाले दर्शन मोहनीय के फल का अभाव है और न इन्हें चारित्र मोहनीय स्वरूप ही माना जा सकता है, क्योंकि अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों के द्वारा आवरण किये गये चारित्र के आवरण करने में फल का अभाव है, इसलिये उपर्युक्त अनन्तानुबंधी कषायों का अभाव ही सिद्ध होता है। किन्तु उनका अभाव नहीं है, क्योंकि सूत्र में इनका अस्तित्व पाया जाता है। इसलिये इन अनन्तानुबंधी कषायों के उदय से सासादन भाव की उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती है। इस ही अन्यथानुपत्ति से इनके दर्शनमोहनीयता और चारित्र मोहनीयता अर्थात् सम्यक्त्व और चारित्र को घात करने की शक्ति का होना सिद्ध होता है।

पूज्य आचार्य वीरसेन महाराज आदि के उपरोक्त प्रमाणों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अनन्तानुबंधी सम्यक्त्व का भी घात करती है। इतना और भी विशेष है कि मोक्षमार्ग प्रकाशक, नवें अधिकार में पं. टोडरमल जी ने इस प्रकार कहा है- 'यहाँ प्रश्न-जो अनन्तानुबंधी तो चारित्रमोह की प्रकृति है सो चारित्र को घातै, याकरि सम्यक्त्व का घात कैसे सम्भवै? ताका समाधान-अनन्तानुबंधी के उदयतैं क्रोधादि रूप परिणाम हो हैं, किछु अतत्त्व श्रद्धान होता नाहीं। तातैं अनन्तानुबंधी चारित्र ही को घातै है, सम्यक्त्व को नाहीं घातै है।' मोक्षमार्ग प्रकाशक का यह कथन उपरोक्त आगम प्रमाणों के अनुसार न होने से आगम सम्मत नहीं है।

जिज्ञासा-2 के समाधान में 'सासादन में उपशम सम्यक्त्व का काल है' इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि दूसरे गुणस्थान में उपशम सम्यक्त्व है, क्योंकि दूसरे गुणस्थान वाला णासियम्मोत्तो (गो. जी. 20, प्रा. पं. सं. 1/9, श्री धवला 1/66) अर्थात् नाशित सम्यक्त्व (जिसका सम्यक्त्व रत्न नष्ट हो चुका ऐसा जीव) कहलाता है। सासादन गुणी असद्दृष्टि है। (धवला 1/165) वह उपशम सम्यक्त्व के काल के अंत में पतित-नाशित सम्यक्त्व होकर ही सासादन को प्राप्त होता है, स्थितिभूत उपशम सम्यक्त्व के साथ सासादन में नहीं जाता, यह अभिप्राय है। 'सासादन में उपशम सम्यक्त्व का काल है' इसका अभिप्राय यह है कि उपशम सम्यक्त्व

काल की अंतिम 6 आवली की अवधि में कोई जीव परिणाम हानिवश सम्यक्त्व रत्न को खोकर (ल. सा. पृष्ठ 83 मुख्तारी) सासादन (नाशित सम्यक्त्व व मिथ्यात्व गुण के अभिमुख) हो जाता है। (जयधवल 12, लब्धिसार गा. 99 से 109, धवल 4 /339-343 आदि)

चौबीस ठाणा में उपशम सम्यक्त्व की प्ररूपणा करते हुए, उपशम सम्यक्त्व को चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक कहा जाता है, दूसरे गुणस्थान में नहीं कहा जाता है। दूसरे सासादन गुणस्थान में तिर्यचायु आदि 25 अशुभ प्रकृतियों का बंध होता है, जो उपशम सम्यग्दृष्टि को बिल्कुल संभव नहीं है। अतः उपरोक्त समाधान के अनुसार सासादन गुणस्थान में उपशम सम्यक्त्व का काल न मानकर उसका सही अभिप्राय समझना चाहिये। इस द्वितीय गुणस्थान को सासादन सम्यग्दृष्टि कहने का वास्तविक अभिप्राय क्या है, इस सम्बन्ध में श्री धवला पुस्तक 1, पृष्ठ 166 का निम्न कथन ध्यान देने योग्य है, 'प्रश्न-सासादन गुणस्थान विपरीत अभिप्राय से दूषित है। इसलिये इसमें सम्यग्दृष्टिपना कैसे बनता है?'

उत्तर-नहीं, क्योंकि पहले वह सम्यग्दृष्टि था इसलिये भूतपूर्ण न्याय की अपेक्षा उसके सम्यग्दृष्टि संज्ञा बन जाती है। वास्तव में सासादन सम्यग्दृष्टि का सही अर्थ है, 'आसादना सहित जिसकी समीचीन दृष्टि होती है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि कहलाता है।'

यहाँ भी इतना विशेष है कि पं. टोडरमल जी के समक्ष श्रीधवला आदि ग्रंथों का प्रकाशन न होने के कारण, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा उनके द्वारा रचित अन्य ग्रंथों में बहुत से ऐसे प्रसंग पढ़ने में आते हैं, जो सूक्ष्म विवेचन करने वाले श्री धवला आदि ग्रंथों के अनुसार आगम सम्मत नहीं है। कुछ पक्षपाती लोग, श्री धवला आदि ग्रंथों के अर्थ को मोक्षमार्ग प्रकाशक के अनुसार तोड़मरोड़ कर अपनी स्थूल बुद्धि का परिचय देते हैं, जबकि उनको धवला आदि ग्रंथों के अनुसार मोक्षमार्ग प्रकाशक में आवश्यक सुधार कर अपनी बुद्धि का परिमार्जन करना ही मोक्षमार्ग में श्रेयस्कर है।

1=205 प्रोफेसर कालोनी

आगरा - 28002

द्विदल सेवन बनाम मांसाहार

पं. पुलक गोयल

भौतिकवादी युग में जहाँ आज पश्चिमी सभ्यता का प्रचार-प्रसार बढ़ता चला आ रहा है, ऐसे समय में रसना इन्द्रिय की लोलुपता, मांसाहार का सेवन दही बड़े के रूप में करा रही है। आज देखें किसी भी अनुष्ठान, बड़े-बड़े आयोजनों, समारोहों में तक में यदि दही का रायता, दही बड़ा नहीं बना तो भोज्य पदार्थ अच्छे नहीं लगते एवं कुछ अधूरापन महसूस होता है इसलिये जब भी ऐसे कार्यक्रम होते हैं उनमें भोजन के मीनू में प्रथम स्थान दही और बेसन से बने रायता एवं बड़े का होता है। हो सकता है ज्ञान के अभाव में इसे भक्ष्य पदार्थ की सूची में स्थान प्राप्त हो लेकिन मैं इस लेख के माध्यम से यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि द्विदल बनाम मांसाहार ही है।

दलने पर जिनके प्रायः बराबर-बराबर दो टुकड़े होते हैं जैसे चना, मूंग, उड़द आदि के चून आदि के मेल से बनने वाली कढ़ी, रायता, दही बड़े आदि पदार्थों को द्विदल या द्विदलान्न कहते हैं। ऐसे द्विदलान्न के मुख में जाने पर जीभ-लार के संयोग से सम्मूर्छन त्रस जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। इसलिये द्विदलान्न को अभक्ष्य माना गया है।

द्विदल के प्रसंग में पं. हीरालाल जी शास्त्री की घटना प्रस्तुत कर रहा हूँ। 50 वर्ष पुरानी बात है एक बार वे ललितपुर (उ.प्र.) गये वे प्रतिदिन स्नान के लिये नदी जाया करते थे। एक मुसलमान को पींजरा में तीतर और हाथ में कटोरा लिए प्रतिदिन देखा करते थे। वह कटोरा में रखे छांछ और बेसन को अंगुली से घोलकर, उसमें थूककर और सूर्य की किरणों की ओर कुछ देर दिखाकर उसे कबूतर के आगे पिंजरे में रख देता था। जब उन्होंने उससे एक दिन पूछा तुम ऐसा क्यों करते हो, तब उसने कहा कि छांछ में घुले उस बेसन में थूककर सूर्य की किरणों के योग से कीड़े पड़ जाते हैं, जिन्हें यह तीतर चुग लेता है। मुझे यह घटना पढ़कर शास्त्र सागारधर्मावृत के ये वाक्य याद आ गये "आमगोरस संपृक्तं, द्विदलं प्रायशोऽनवम्" शास्त्र का यह वाक्य यथार्थ है और द्विदलान्न अभक्ष्य है। जिसका अर्थ है- गोरस में मिले हुए द्विदल का नहीं खाना। उसी प्रकार हमारी जिह्वा में द्विदल जाते ही संपूर्छन त्रस जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। इस लेख को पढ़कर बुद्धिजीवी द्विदल के खाने का आजीवन त्याग करें।

समाचार

दशलक्षण पर्व में संस्थान द्वारा अभूतपूर्व धर्म प्रभावना
सांगानेर (जयपुर) प्रातः स्मरणीय परम पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के शुभाशीर्वाद एवं पूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज की मंगल प्रेरणा से गत 8 वर्षों से प्रगतिशील श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर द्वारा संचालित महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास के विद्वत्त्वर्ग द्वारा दशलक्षण पर्व 2005 के पावन प्रसंग पर निस्पृह भाव से प्रवचन, पूजन, सांस्कृतिक कार्यक्रम, विधानादि विधाओं के माध्यम से सम्यग्ज्ञान का प्रचार-प्रसार करते हुये अनुपम धर्म प्रभावना की गई है।

संस्थान के सम्यग्ज्ञान के प्रचार-प्रसार में सम्यक् समर्पण को देखते हुए भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज के 10 प्रान्तों से लगभग 175 निमंत्रण पत्र इस सत्र में प्राप्त हुये थे, उसमें से 108 स्थानों में विद्वान् उपलब्ध कराये गये। आगे और भी अधिक विद्वान् उपलब्ध कराने का प्रयास जारी है। इस पुनीत प्रसंग में भारतवर्षीय विभिन्न स्थानों की दिगम्बर जैन समाज द्वारा विद्वानों की निस्पृह भावना को दृष्टिगत करते हुये अधिकाधिक सहयोग राशि संस्थान को प्रदान की गई है। एदतर्थ संस्थान समाज का आभारी है।

विदेश- 1. कनाड़ा-पं. राकेश जी

उत्तरप्रदेश- 2. तालबेहट -ब्र. भरत जी 3. आगरा-जयपुर हाऊस-पं. आशीष जी, पं. रवि जी, 4. राजामण्डी-पं. मौसम जी शास्त्री 5. शालीमार इन्क्लेब-पं. मयंक जी 6. मोती कटरा- सुनील अग्रवाल, पं. सौरभ जी 7. ललितपुर-पं. सोनल जी 8. कोशीकलां-पं. नीरज शास्त्री भगवां 9. गुरसराय, झांसी-पं. नवनीत जी, 10. बदरवास-पं. भागचन्द्र जी, पं. अभिषेक जी 11. चिरगांव- पं. आलोक जी, पं. अजय जी 12. पंचायती मंदिर, झांसी- पं. दीपक जी 13. सदर बाजार, झांसी-पं. राजेश जैन 14. अलीगढ़-पं. दिलीप जी 15. बुलंद शहर-पं. अखिलेश जैन

मध्यप्रदेश- 16. दमोह (म.प्र.)-पं. सौरभ जी, पं. किरणप्रकाश जी 17. शिवपुरी-पं. आलोक जी 18. **भोपाल**-टी. टी. नगर-पं. अनंत जी, पं. नकुल जी 19. नारायण नगर-पं. दीपेश जी 20. पंचशील नगर-पं. ब्रजेश जी 21. मंगलवारा-पं. सतेन्द्र जी 22. शाहपुरा-पं. राकेश जी 23. अशोक नगर-पं. पुलक

जी, पं. राहुल जी 24. देवेन्द्र नगर-पं. सीतेश जी 25. ग्वालियर-पं. अरविन्द्र जी 26. शुजालपुर मण्डी-पं. जयपाल जी, पं. नितिन जी 27. मोहन नगर वार्ड, सागर-पं. भरत जी 28. सिहोर-पं. आशीष जैन 29. करेली-पं. विकाश जैन, पं. प्रशून 30. गोटेगांव-पं. सागर जी 31. रायसेन-पं. प्रशांत जी 32. गंजबसौदा-पं. पवन जैन, पं. सुदर्शन 33. खातेगांव-पं. सजल गोयल, पं. रूपेश जैन 34. गोंदिया-पं. सचिन जैन 35. घंसौर-पं. अरविन्द्र जैन 36. धामनोद धार-पं. विनय जैन, पं. सोनू जैन 37. नलखेडा-हेमन्त जैन, पं. आशीष जी 38. बांसा तारखेडा-पर्यूष जैन, पं. रवि जैन, 39. बानापुरा-अभिषेक जैन 40. बदनावर रतलाम-पं. अभिषेक जैन, पं. सचीन्द्र जैन 41. शुजालपुर शहर-पं. सुनील जी, पं. दीपक जी 42. नैनपुर- पं. सौरभ जैन, पं. सोयल जैन

राजस्थान- 43. बागीदौरा-पं. बाहुबलि जी 44. पार्श्वनाथ कालोनी, अजमेर-श्री प्रकाश चन्द्र जी पहाड़िया 45. सोनी जी नशियां, अजमेर- श्री मति पुष्पा बैनाड़ा 45. आश्रम, उदयपुर-पं. अनुराग जैन, पं. श्रेयांस जैन 46. धानमण्डी, उदयपुर-राजेश जैन, पं. मोहित जी 47. कोटा-पं. जितेन्द्र जी, पं. राजेश जैन 48. सर्वोदय कालोनी, अजमेर- पं. प्रवीण जी जैन 49. मोहन कालोनी, बांसवाडा-पं. मोनू जैन, 50. तलवाडा-पं. विपुल जैन खोत, गौरव जैन 51. बालोतरा-पं. विकास जी कटनी, पं. अभिषेक जी 52. आवां-पं. वीरेन्द्र जी 53. देवली-पं. माणिकचन्द्र जी, पं. पुनीत जी 54. किशनगढ़-पं. शैलेश जी 55. बूंदी-पं. विनीत जी 56. कामर्शियल कालोनी, बांसवाडा-पं. देवेन्द्र जी, पं. राजेश जैन 57. नैनवां-पं. हितेश जी, पं. अरुण जी 58. पादड़ी बड़ी-पं. नीतेश जी 59. झालावाड-पं. अखिलेश जैन, पं. अभिषेक 60. बांदीकुई-पं. संजय जैन, पं. सर्वेश जी 61. बडोदामेव, अलवर-पं. महावीर जी, राहुल जैन 62. मारोठ-विक्रम जैन 63. बारां-आशीष जैन, पं. आलोक जी 64. कठूमर-पं. सूरज कुमार पाटील पं. विवेक जी 65. इंद्रगढ़-पं. भाविन जैन 66. शीशवी-अंकित जैन 67. बोरी-पं. आशीष जैन 68. छबडा-पं. ललित जैन, पं. शिखर चन्द्र 69. चूरू-पं. ऋषभ जी 70. गरोठ-पं. नीरज जैन, पं. अखिलेश जी 71. बड़वाह-पं. मोहित जी, पं. नीलेश जी 72. बाँली-पं. शैलेन्द्र जी, पं. प्रदीप जी 73. केशवरायपाटन-पं. अंकित जैन, पं. अंकित जैन 74. मीठणी-

पं. दीपक जैन, पं. पीयूष जी 75. चौमू-पं. दीपक जैन-पं. सौरभ जी 76. **जयपुर-बापूनगर-पं. मयंक जी 77. जवाहर नगर-पं. पवन जी 78. दुर्गापुरा-पं. एस. पी. जैन 79. लालकोठी-पं. शिखरचन्द्र जी 80. कीर्तिनगर-श्री मति उज्ज्वला गोसावी 81. सांगानेर-श्री मति शकुन्तला जैन 82. जनता कालोनी-पं. राजेश जी गंगवाल 83. मालवीय नगर-7-पं. दीपक जी शास्त्री 84. चित्रकूट कालोनी-पं. संदीप जी मानसरोवर 85. मालवीय नगर-10-पं. राहुल फुसकेले 86. बरकत नगर-पं. क्षितिज जी**

महाराष्ट्र- 87. जलगांव-पं. शिखर चन्द्र जी 88. धुले-श्री मति अंजलि खोबरे 89. साकीनाका, बम्बई-पं. सुनील जी 90. घाटकोपर, बम्बई-पं. सोनेश जैन, पं. लोकेश जी 91. बुलडाना-पं. विनोद जी बेलोकर 92. अहमद नगर-पं. प्रतीश काले 93. कुंथलगिरि-पं. जिनेश जैन, जी भरत 94. बारामती-पं. वैभव मेहत्रे, पं. प्रीतेश जी 95. उम्मानाबाद-पं. अमित जैन, पं. नमन जी 96. पिम्प्रीराजा-पं. लवलेश जैन, पं. प्रवीण रोकडे 97. सतारा-पं. श्रीपाल जैन 98. करकंब-पं. सचिन गोरे, पं. मनीष जैन

हरियाणा- 99. रेवाड़ी-पं. राजेश जी, 100. छपरौली-पं. सुरेश जैन

दिल्ली- 101. दरियागंज, दिल्ली-पं. नवीन जी, पं. मनोज जी 102. सरिता विहार, दिल्ली-पं. विवेक जी, पं. राजीवजैन

गुजरात- 103. माडवी-पं. अंकेश जैन, पं. सचिन जी 104. मेहसाणा-पं. विनय जैन, पं. निखिल जी

पश्चिम बंगाल- 105. सन्मति नगर-पं. सचिन जैन बंडा 106. अडंगाबाद-पं. रोहित जैन 107. लालगोला-पं. सुदीप जैन 108. खगड़ा-पं. संदीप जैन

मुनि श्री 108 चन्द्रप्रभ सागर जी महाराज का

सिंहनिष्क्रीडित व्रत सम्पन्न

(औरंगाबाद महाराष्ट्र) परमपूज्य संतशिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के परमशिष्य पूज्य मुनि श्री 108 विनित सागर जी महाराज एवं चन्द्रप्रभ सागर जी महाराज ने ऐतिहासिक नगरी औरंगाबाद में चातुर्मास किया। मुनि चन्द्रप्रभ सागरजी ने सिंहनिष्क्रीडित व्रत किये इस व्रत में आचार्य जिनसेन कृत हरिवंश पुराण का अनुसरण करते हुए एक उपवास एक आहार, बढ़ते एवं घटते क्रम में किये। महाराज जी ने 80 दिवस में 60 उपवास और 20 दिन पारणा की। ऐसा महान् व्रत प्रथमाचार्य आचार्य शांतिसागर जी ने जीवन में 3 तीन बार किये थे तथा उनके बाद उनके

30 दिसम्बर 2005 जिनभाषित

शिष्य मुनि श्री नेमिसागर जी ने एक बार किये थे। ऐसा मानते हैं कि 50 वर्षों के बाद किसी साधु ने यह व्रत किया। मुनि श्री उपवास करते हुए अपने षट् आवश्यकों का दृढ़ता से पालन करते थे तथा श्रावकों को भी पूरा धर्मलाभ देते थे। उपवास करते हुये भी कभी ग्लानी या थकावट चेहरे में महसूस नहीं हुई। इस पंचम काल में भी इतनी कठिन तपस्या करने वाले संत को कोटिशः नमन।

एस. बी. काळे जैन, औरंगाबाद

राष्ट्रीय युवा विद्वत् संगोष्ठी

(दिल्ली) परमपूज्य संतशिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के परमशिष्य उपाध्याय श्री 108 गुप्तिसागर जी महाराज के मंगल सान्निध्य में श्री 1008 शांतिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन अवसर पर पलवल फरीदाबाद में राष्ट्रीय युवा विद्वत् संगोष्ठी का त्रिदिवसीय आयोजन 27 से 29 जनवरी 2006 तक किया जा रहा है। अतः सभी विद्वानों से अनुरोध है कि अपना नाम, पता, व्यवसाय, फोन नं. आदि सहित बायोडाटा 30 नवम्बर 2005 तक संयोजक के पते पर भिजवाने का कष्ट करें। इस संगोष्ठी हेतु वे ही युवा विद्वान् सम्पर्क करें जो शोध-आलेख लिखने व बोलने में दक्ष हों। संगोष्ठी में पूज्य उपाध्याय श्री गुप्तिसागर जी एवं राष्ट्रीय स्तर के वरिष्ठ तीन विद्वानों द्वारा आलेखों की समीक्षा की जायेगी। त्रिदिवसीय यह संगोष्ठी पूज्य उमास्वामी के तत्त्वार्थ सूत्र पर है। प्रत्येक युवा विद्वान् को ग्रंथ से सम्बन्धित अलग-अलग विषय दिया जायेगा। जिन युवा विद्वानों का संगोष्ठी के लिये चयन समिति द्वारा चयन होता है उन्हें संगोष्ठी के 15 दिन पूर्व टाइप किया हुआ आलेख जमा करवाना होगा। संगोष्ठी में 30 वर्ष तक के युवा विद्वानों को आमंत्रित किया जायेगा।

सम्पर्क सूत्र- 1. सुनील जैन संचय शास्त्री नरवाँ जिला-सागर (म. प्र.) मो. 09411260785

2. आशीष कुमार जैन शास्त्री श्री दिगम्बर जैन उ. प्रा. गुरुकुल, हस्तिनापुर जिला-मेरठ (उ.प्र.) मो. 09411067242

आर्थिका दीक्षा सम्पन्न

मदनगंज, अजमेर स्थित श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर में 21 अक्टूबर 2005 शुक्रवार को आर्थिका गणिनी श्री 105 स्याद्वादमती माता जी के सान्निध्य में इन्दौर निवासी वयोवृद्ध धर्मपरायणा ब्रह्मचारिणी बबी बाई ने साध्वी दीक्षा अंगीकार की। आयोजित दीक्षा समारोह में प्रतिष्ठाचार्य पं. धर्मचन्द्र जी

शास्त्री, दिल्ली द्वारा किये गये मंत्रोच्चार के बीच 82 वर्षीय बबी बाई का 16 संस्कारों के साथ केशलोच एवं दीक्षा कार्यक्रम विधि विधान पूर्वक सम्पन्न हुआ।

पारसमल बाकलीवाल

“गिरनार-सच और साचिश” VCD का विमोचन एवं प्रस्तुति

गिरनार जी तीर्थ राष्ट्र स्तरीय एक्शन कमेटी, राजस्थान अंचल के तत्वावधान में “गिरनार-सच और साचिश” नामक एक विशेष वीडियो सीडी का निर्माण किया गया है, जिसका विमोचन दिनांक 11 सितम्बर 2005 को श्री दिगम्बर जैन नसियां भट्टारक जी, जयपुर में आयोजित गिरनार जी आंदोलन के दूसरे चरण के अवसर पर, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री नरेश कुमार सेठी द्वारा किया गया तथा उसके पश्चात् इस सीडी का LCD Projecter द्वारा बड़ी स्क्रीन पर प्रदर्शन किया गया। दशलक्षण पर्व में जयपुर तथा अन्य कई स्थानों पर इस वीसीडी की प्रस्तुति की गई तथा समाज द्वारा इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। इस सीडी का निर्देशन तथा निर्माण युवा चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट गौरव जैन छाबड़ा द्वारा किया गया है। इस सीडी में गिरनार जी मुद्दे पर चल रही सभी गतिविधियों तथा गिरनार बचाओ आंदोलन की संपूर्ण जानकारी आर्कषक एवं रोचक तरीके से प्रस्तुत की गई है। गिरनार जी मसले पर समाज में जागरूकता पैदा करने के उद्देश्य से इस वीसीडी की प्रस्तुति टीवी अथवा LCD Projecter के माध्यम से की जा सकती है।

सीडी के लिये सम्पर्क करें- गौरव जैन छाबड़ा
10, एवरेस्ट कॉलोनी, लालकोठी, जयपुर (राज.)

भोपाल में अभूतपूर्व धर्म प्रभावना

आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के परमशिष्य जंगल वाले बाबा के नाम से विख्यात पूज्य मुनि श्री चिन्मयसागर जी महाराज के संसंघ सान्निध्य में मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के इतिहास में प्रथम बार इतने विशाल स्तर पर ऐतिहासिक कल्पद्रुम महामण्डल विधान का भव्य आयोजन 24.09.05 से 5.10.05 तक बा. ब्र. अभय जी (दस प्रतिमाधारी) इन्दौर, बा.ब्र. सुमत जी एवं बा.ब्र. अनिल जी भोपाल के कुशल निर्देशन में 500 इन्द्र-इन्द्राणियों और हजारों श्रावकों की उपस्थिति में सानंद सम्पन्न हुआ। जंगल वाले बाबा से प्रभावित होकर जूना मण्डला के जिन हजारों

आदिवासियों ने आजीवन शाकाहारी व्रत लिया है, उनमें से 60-70 आदिवासी विशेष आर्कषण के केन्द्र रहे। जिन्होंने दिगम्बर जैन धर्म के प्रति श्रद्धा भक्ति दिखा कर कल्याण का आशीर्वाद मांगा।

श्रीतल जैन, भोपाल

आचार्य विद्यासागर पाठशाला का शुभारंभ

जयपुर मानसरोवर स्थित मध्यम मार्ग स्थित आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर परिसर में आचार्य विद्यासागर पाठशाला का विधिवत् पूजा अर्चना के साथ शुभारम्भ हुआ। आर्यिका श्री 105 पूर्णमति माता जी ने पाठशाला के पंजीकृत लगभग 125 विद्यार्थियों को संस्कार युक्त मांगलिक भविष्य की कामना करते हुये आशीर्वचन प्रदान किया। इस अवसर में उद्घाटनकर्ता प्रो. एस.एन. जैन एवं उनके परिवार की ओर पच्चीस हजार एक सौ पच्चीस प्रदत्त किये गये।

दशलक्षण पर्व में श्रमण ज्ञान भारती द्वारा अद्वितीय धर्म प्रभावना

मथुरा (उत्तरप्रदेश) श्री दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र मथुरा की परम पावन वसुन्धरा पर प्रातः स्मरणीय पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के शुभाशीर्वाद एवं उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से जैन संस्कृति के प्रचार प्रसार हेतु संस्थापित श्रमण ज्ञान भारती छात्रावास द्वारा पर्युषण पर्व में देश के विभिन्न 29 स्थानों पर धर्म प्रभावना हेतु विद्वान् भेजे गये हैं। जिनका विवरण निम्न प्रकार है-

1. गुड़गाँव-पं. जिनेन्द्र शास्त्री, पं. राहुल जैन
2. हुपरी (महा.)-ब्र. अरुण भैया, पं. सौरभ जैन
3. हरिपर्वत आगरा-पं. अभिषेक शास्त्री
4. नसीराबाद-पं. सुनील शास्त्री,
5. कैलाश नगर, दिल्ली-पं. अभिषेक जैन,
6. शास्त्रीनगर जयपुर-पं. सौरभ जी
7. भिलाई-पं. केतन सिंघई,
8. खेकड़ा बागपत-पं. अमोल वरवंटे, पं. अग्रज जी
9. पचेवर (राज.)-पं. केतन जी,
10. थड़ी मार्केट, जयपुर-पं. विकास जी,
11. शाहपुरा भीलवाड़ा-पं. संचय जी
12. महावीर नगर, कोटा-पं. अंकित जी, पं. मयंक जी
13. बेगूं (चित्तोडगढ़)-पं. शैलेन्द्र जी
14. अलीगढ़ (टोंक)-पं. सौरभ जी ललितपुर
15. कांकरोली-पं. मनीष जी
16. एत्मादपुर आगरा-पं. नितिन जी, पं. यशवंत जी
17. खेल्डी (राज.)-पं. दिनेश जी
18. अलौद (राज.)-पं. ब्रिजेश जी
19. बोदला से. 7 आगरा-पं. आशीषजी
20. शेर्दुणी (महा.)-पं. वर्धमान जी, पं. ब्रजेश जी
21. रजावत फार्म जयपुर-पं. सौरभ जी
22. वैशाली नगर जयपुर-पं. विवेक जी
23. पालबीचला

अजमेर-पं. संजय जी, पं. अनिल जी 24. भिगवण (महा.)-
पं. अमोल म्हेसकर 25. शिवपुरी-पं. अंशुल जी 26. मन्दसौर-
पं. अमित जी, पं. वृषभ जी 27. नदवई (राज.)-पं. अनुज
जी 28. भीलवाड़ा-पं. दीपेश जी 29. पहाड़ी-पं. राहुल जी।

शीतकालीन अवकाश में बहेगी ज्ञानधारा

परम पूज्य सराकोद्धारक उपाध्यायरत्न श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज की परम प्रेरणा एवं आशीर्वाद से एवं श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ उत्तर प्रदेश के तत्वावधान में विगत गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी शीतकालीन अवकाश में 25 दिसम्बर से 1 जनवरी 2006 तक राजस्थान के कोटा संभाग के विभिन्न अंचलों में शिक्षण शिविरों का आयोजन होने जा रहा है।

संयोजक-आशीष कुमार जैन शास्त्री,
कटारे मुहल्ला शाहगढ़, सागर

संस्थान के छात्रों को दी आध्यात्मिक ज्ञान वर्षा

(सांगानेर) परम पूज्य प्रातः स्मरणीय आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य मुनिपुंगव श्री 108 सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य में दिनांक 13 अक्टूबर से 25 अक्टूबर 2005 तक आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर के 51 शास्त्री कक्षा के विद्यार्थियों ने प्रवचनसार का द्वितीय अधिकार एवं स्वयंभूस्तोत्र का अध्ययन पूज्य मुनि श्री के मुखारविन्द से निर्जर अमृतवाणी से किया।

पुलक गोयल

जैन पाठशाला बाल संस्कार सम्मेलन एक अभिनव प्रयोग

छिन्दवाड़ा 25 अक्टूबर, अहिंसा स्थली, गोलगंज में स्थित विशाल पंडाल में आयोजन शिविर समापन मानस पटल पर अमिट स्मृति छाप देने वाला सिद्ध हुआ। इसमें सिवनी, मण्डला, पिडरई, गोटेगांव, लखनादौन, छपारा, नरसिंहपुर और छिन्दवाड़ा में संचालित पाठशालाओं के करीब अर्द्धसहस्र छात्र-छात्राओं ने सम्मिलित होकर अभूतपूर्व प्रस्तुति दी।

इस अवसर पर मुनिश्री समतासागर जी महाराज ने अपने उद्बोधन में कहा कि शिशु के जीवन में मासूम माटी की तरह अपार संभवनायें रहती हैं, माटी से शराब पीने का कुल्हड़ भी बन सकता है और पूजा का मंगल घट भी। कुशल कुम्भकार की तरह योग्य गुरु का सान्निध्य मिलता

है, तो यही बच्चे जीवननिर्माता, युगनिर्माता बनते हैं। जैन बाल संस्कार सम्मेलन का यह आयोजन विशिष्ट विद्वान बनाने का आयोजन नहीं, बल्कि नैतिकता, धार्मिकता की धरा पर संस्कारों की दीक्षा का आयोजन है। सभा में उपस्थित अर्द्धसहस्र बच्चे इस बात का सबूत हैं कि भावी पीढ़ी को यदि जागरण का मंत्र दिया जाये, तो आज भी यही तरुणाई अपनी, अपने परिवार, समाज और राष्ट्र की जिम्मेदारियाँ महसूस कर सकती है। परिणाम सामने है, बाल सम्मेलन की यह गंगोत्री ज्ञान और भक्ति के संस्कारों को प्राप्त कर विशाल जागरूक जनचेतना का आदर्श प्रस्तुत कर सकती है। सभी विद्यार्थी शिक्षक, शिक्षिकायें, संयोजक और समाज के सहयोगी जन इस उपलब्धि के लिए शुभाशीष के पात्र हैं।

ऐलक श्री निश्चयसागर महाराज ने कहा कि जो लता बिना किसी सहारे के होती है, वह विलय को प्राप्त होती है। छोटे-छोटे बच्चों में संस्कारों के बीज बोना आवश्यक है। देवशास्त्र, गुरु के प्रति श्रद्धाभक्ति के संस्कार सुयोग्य श्रावक बनाते हैं। यही संस्कारित बच्चे, राष्ट्र के जिम्मेदार नागरिक बनेंगे।

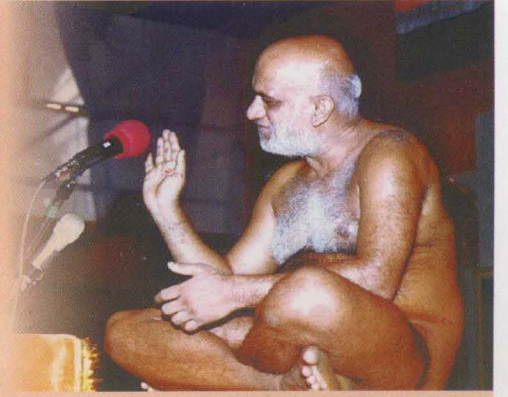
नन्हें मुन्ने छात्र छात्रायें प्रातः 7.30 बजे केशरिया वस्त्र-परिधान में कतारबद्ध, अनुशासित होकर विभिन्न मार्गों से नगर-भ्रमण का भव्य प्रदर्शन कर नगर के मुख्य स्थल अहिंसा-स्थली गोलगंज में पहुँचकर धर्मसभा के रूप में परिवर्तित हुए। विभिन्न नगरों से पधारे पाठशाला संचालक, शिक्षक, शिक्षिकायें एवं आमंत्रित अतिथियों ने मुनिसंघ के पुनीत चरणों में श्रीफल समर्पित कर आशीष प्राप्त किया। वहीं बाहर से पधारे अतिथियों का सम्मान महासभा चातुर्मास आयोजन समिति विभिन्न संगठनों, समितियों, संस्थानों के पदाधिकारियों ने श्रीफल, बैग, स्मृतिचिन्ह एवं पाठशाला के छात्र-छात्राओं, शिक्षक-शिक्षिकाओं को परिधान भेंट कर सम्मानित किया।

मुनिसंघ की आहारचर्या एवं सामायिक के पश्चात् ठीक दोप. 2 बजे से 5 बजे तक संतनिवास प्रवचन हाल में धर्मसभा पुनः प्रारंभ हुई। जिसमें विभिन्न पाठशालाओं के छात्र-छात्राओं ने आकर्षक धार्मिक, सांस्कृतिक नृत्य, नाटक, भजनों एवं फैन्सी ड्रेस की प्रस्तुति देकर उपस्थित विशाल जनसमूह का मन जीत लिया, जिससे प्रशंसा ही नहीं, बल्कि पाठशाला के लिए पुरस्कार राशि भी प्राप्त की।

संयोजक

‘संस्कार अच्छे होंगे, तभी संस्कृति बचेगी’

● मुनि श्री सुधासागर जी



“संस्कृति की रक्षा की बात सब करते हैं, बड़े-बड़े नेता भाषण देते हैं, हर मंच से संस्कृति के हास पर चिन्ता दर्शायी जाती है परन्तु खुद के और दूसरों के संस्कार कैसे सुधारे जाएं इस पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। सभी तो संस्कृति सिसक रही है, लुट रही है, मिट रही है और संस्कार महावीर व राम की जगह लगातार रावण और कंस के समान होते जा रहे हैं, फिर बताओ संस्कृति कैसे बचेगी? कैसे उसकी मर्यादा की रक्षा हो सकेगी? कौन संस्कृति के गौरव को बरकरार रख पाएगा? ध्यान रखना-यदि संस्कार इसी तरह दुराचारी और व्यभिचारी जैसे पनपते रहे तो अपसंस्कृति के भंवर जाल में फंस कर एक दिन नष्ट होना पड़ेगा। संस्कृति को बचाना है तो अपने संस्कारों को पवित्र बनाओ तभी स्वयं का, समाज का और राष्ट्र का कल्याण होगा।”

भारतीय संस्कृति हमारे देश की शान और प्राण है परन्तु बिना संस्कारों के संस्कृति की रक्षा हो ही नहीं पाएंगी। संस्कारों से संस्कृति का जन्म हुआ है फिर संस्कारों को पवित्र बनाना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। संस्कारों से ही धर्म बचेगा, मनुष्य में मनुष्यता आ सकेगी, हिंसा का हास होगा, अराजकता बंद हो सकेगी, अशांति मिटा सकोगे, शांति को पा सकोगे और एक दिन फिर रामराज्य भी असंभव नहीं है। सारी महिमा संस्कारों की है, जैसी हमारी सोच (करनी) वैसे ही परिणाम सुनिश्चित हैं। संस्कृति की नींव संस्कारों पर टिकी है, यदि उसे बचाना है तो संस्कारवान् बनना पड़ेगा और कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं यह पक्की तरह से मान लेना।

संस्कार भगवान् के पास मांगने से नहीं मिलेंगे, न चाहने से हाँसिल होंगे। संस्कार के लिए तो समर्पित होना पड़ेगा। भगवान् के समक्ष भिखारी नहीं भक्त बनना होगा। जब आत्म समर्पण करोगे तब संस्कार मानवता में बदल जाएंगे, फिर दया, करुणा की भावना स्वतः ही फूट पड़ेगी और भक्त से फिर भगवान् भी दूर नहीं होंगे। परमात्मा से भीख मांगने की गलत आदत छोड़ो। मिथ्या दृष्टि को छोड़ कर सम्यक् दृष्टि को अपनाओ। यदि प्रभु पर विश्वास ही नहीं है, तो फिर उनसे भीख क्यों मांग रहे हो? प्रभु तो अन्तर्यामी हैं, तीनों लोक के स्वामी हैं, त्रिकाल दृष्टि हैं, घट-घट के ज्ञाता हैं, सर्वत्र हैं, अरिहन्त हैं और वे किसी को कष्ट देते ही नहीं हैं। वे तो परम दयालु और करुणा निधान हैं। याद रखना-भगवान् कभी कुछ नहीं देते ही नहीं, अपने संस्कारों से उत्पन्न कर्म ही अच्छे-बुरे के कारण हैं। फिर भगवान् के समक्ष भिखारी नहीं भक्त बनें। कभी भगवान् साक्षात् सामने आ भी जायें, तब भी मत मांगना। हात मत फैलाओ, दोनों हाथ जोड़कर झुकना सीखें। भक्त कभी कुछ मांगता नहीं, मांगने की जरूरत भी नहीं है बल्कि उसे तो अपने आप अपनी पुण्याई व सुसंस्कारों के बल पर मिलेगा, यह तय है। तभी तो कहा है- “बिन मांगे मोती मिले मांगे मिले न भीख...।”

सुसंस्कारी व्यक्ति ही यह भावना करेगा कि भगवान् उसके हृदय में विराजित हो जाएं। वह यह नहीं सोचेगा कि मैं भगवान् के हृदय में बैठ जाऊं। हनुमान जी ने भगवान् का सीना नहीं फाड़ा था बल्कि अपना सीना फाड़कर संसार को यह ज्ञान दिया था कि प्रभु अपने स्वयं के हृदय में हों। उन्हें अपनी आँखों में बसा लू, परन्तु आज तो संस्कारों के अभाव में भक्त मॉर्डन, सुविधा भोगी और सौदागर हो गया। तभी तो आज भगवान् के समक्ष भिखारियों की लाईन लगी है, भगवान् का ही सीना फाड़ने को लोग तैयार हैं, एक नारियल चढ़ाकर, सवा रुपए का प्रसाद चढ़ाकर एक मुट्ठी चावल अर्पित कर १०० बोरी का मुनाफा और एक दम १० लाख रुपए की लाटरी खोलने का सौदा कर रहे हैं। ऐसे अज्ञानी लोगों को मूर्ख और धूर्त कहा कि भगवान् एक का नहीं होता परन्तु भक्त का भगवान् एक ही होता है। यही तो महिमा है भगवान् की। अतः भगवान् के साथ मत हों, भगवान् को अपने साथ कर लो, फिर कल्याण हो जाएगा, भव-भव तिर जाएगा। बुरे कर्मों का स्वयं जिम्मेदार समझना और सुख और वैभव मिले तो इसे भगवान् का आशीर्वाद मानना, यही है शुभ संस्कार और इसी भावना से बच सकेगी भारतीय संस्कृति।

‘अमृत वाणी’ से साभार

मुरैना (म.प्र.) में जैन युवा प्रतिभा सम्मान समारोह सम्पन्न

परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के आशीर्वाद से परमपूज्य मुनि श्री क्षमासागर जी एवं मुनि श्री भव्यसागर जी की प्रेरणा एवं सान्निध्य में पाँचवा 'जैन युवा प्रतिभा सम्मान समारोह' 5, 6 नवम्बर 2005 को मुरैना म.प्र. में सम्पन्न हुआ, जिसमें हजारों श्रावकों की उपस्थिति में मेधावी छात्र-छात्राओं को पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस समारोह में भाग लेने के लिये भारत के 18 प्रांतों से 1400 जैन बालक-बालिकाओं को आमंत्रित किया गया था।



मुरैना में मुनिश्री क्षमासागर जी के सान्निध्य में संपन्न यंग जैना अवार्ड -05 के तहत पहलीबार आयोजित दीक्षांत समारोह में सम्मानित सीनियर अवार्डी

कक्षा 10 के 85 प्रतिशत एवं कक्षा 12 के 80 प्रतिशत से ऊपर अंक प्राप्त करने वाले क्रमशः 437 एवं 916 कुल 1353 छात्र अपने परिवार के साथ आये हुए थे। प्रथम दिन जिनवन्दना के पश्चात् प्रातः 8 बजे म.प्र. शासन के पूर्व मंत्री श्री विट्ठलभाई पटेल सागर ने दीप प्रज्वलन किया। दोपहर 1 बजे से जैन क्रिज प्रारम्भ हुआ, जिसमें लगभग 400 विद्यार्थियों ने भाग लिया। मुनि श्री क्षमासागर जी ने अपने संबोधन में कहा कि विद्यार्थी कैरियर चुनने से पहले ध्यान रखें कि ऐसा कैरियर न चुनें जो वीतरागता को खंडित कर दे। अपनी आर्थिक स्थिति एवं माता-पिता की इच्छा को देखते हुये, अपनी समता का ध्यान रखते हुये कैरियर चुनें। कैरियर के चयन में अपनी क्षमता का भी ध्यान रखा जावे। हमारे जीवन में विनय और ईमानदारी आनी चाहिये, जिसकी मदद से हम ऊँचाई तक पहुँच सकें। तामसिक प्रवृत्ति को छोड़कर सात्त्विक प्रवृत्ति को धारण करना चाहिये।

दूसरे दिन प्रातः 8 बजे समारोह की मुख्य अतिथि डॉ. प्रो. वनमाला जैन, आई. आई. टी. बम्बई ने दीप प्रज्वलन करके प्रथम सत्र का शुभारम्भ किया। प्रथम सत्र में सीनियर अवार्डी विद्यार्थियों का दीक्षान्त समारोह हुआ एवं सिलेक्शन प्रोफेशनल कोर्स में टॉपर विद्यार्थियों को मैडल, सील्ड एवं साहित्य देकर पुरस्कृत किया गया। दोपहर के सत्र में सभी विद्यार्थियों को मंच से मैडल एवं सील्ड के साथ सम्मानित किया गया। मुख्य अतिथि प्रो. डॉ. वनमाला जैन ने सर्वप्रथम कक्षा 12 के श्री अंकित पाटनी तथा कु. दीपिका जैन को सम्मानित किया, जिन्होंने क्रमशः 97.5% एवं 97.2% अंक प्राप्त किये थे। समारोह के मध्य श्री पन्नालाल वैनाडा आगरा ने मैत्रीसमूह का परिचय दिया। इस अवसर पर देश के अनेक प्रसिद्ध विद्वान उपस्थित थे।

अवार्डी विद्यार्थियों से चर्चा की गई, तो उन्होंने बताया कि इतनी सुंदर व्यवस्था बारातियों के लिए भी नहीं की जाती है। सम्मानसमारोह के अंतिम क्षणों में पूज्य मुनि श्री भव्यसागर जी एवं पूज्य मुनि श्री क्षमासागर जी ने अपना आशीर्वाद उपस्थित समुदाय को देते हुये कहा कि बिनोवा कहते थे 'Learning with doing' अर्थात् काम करने के साथ-साथ सीखें, ऐसी हमारी शिक्षा हो, दूसरों के उपकार का भाव हमारी शिक्षा में हो।

समारोह में इन्दौर से पधारे हुये श्री भंडारी एवं प्रो. सरोज कुमार ने भी अपनी बात विद्यार्थियों को कैरियर काउंसिलिंग के माध्यम से समझाई। छात्रों से भी क्लास-क्रिश्चन करके कैरियर काउंसिलिंग को सफल बनाया। कार्यक्रम का संचालन प्रो. सुमतप्रकाश छतरपुर एवं राजेश छतरपुर ने किया। समापन पर मुरैना शहर के श्रावकों ने सभी अवार्डी एवं अतिथियों को तिलक लगाकर बैंड बाजों के साथ सायं 5 बजे से रात्री 1 बजे तक विदाई दी, जो देखने के लायक थी, यह एक अनूठा सम्मान था।

मुनि श्री क्षमासागर जी ने अपने अन्तिम उपदेश में छात्रों से कहा - हमें यह जानकर गौरव होना चाहिये, कि अहिंसा करुणा और प्रेम हमारा धर्म है। सत्य के प्रति समर्पित होकर निरन्तर आत्मविकास करना हमारा दर्शन है। आत्मसंतोष और साम्यभाव रखना हमारी आध्यात्मिक चेतना का मधुर स्वर है। श्रद्धा और सदाचार से समन्वित ज्ञान ही हमारा विज्ञान है।

मुनि श्री क्षमासागर जी ने अपने अन्तिम उपदेश में छात्रों से कहा -

हमें यह जानकर गौरव होना चाहिये, कि अहिंसा करुणा और प्रेम हमारा धर्म है। सत्य के प्रति समर्पित होकर निरन्तर आत्मविकास करना हमारा दर्शन है। आत्मसंतोष और साम्यभाव रखना हमारी आध्यात्मिक चेतना का मधुर स्वर है। श्रद्धा और सदाचार से समन्वित ज्ञान ही हमारा विज्ञान है।

सुरेश जैन मारौरा, शिवपुरी